

अजेय राष्ट्रभावना

मगवतधरण उपाध्याय

प्रमात प्रकाशन
बाबड़ी बाजार, दिल्ली-६

अजेय राष्ट्रभावना

भगवतचरण उपाध्याय

प्रभात प्रकाशन
बाबड़ी बाजार, दिल्ली-६

मूल्य ३ ५०

प्रकाशक सत्साहित्य केन्द्र
२/१५६ बसपत स्टीट, मधुरा
मुद्रक युवान्तर प्रेस, दिस्मी-६

दो शब्द

यह संग्रह मेरे निबंधों का है जो बीनी धाक्रमण के संदर्भ में लिखे गए थे और 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' 'धर्मधुम' आदि पत्रों में प्रकाशित हुए थे। इस धाक्रमण में भारतीय राष्ट्र को सोते से जगा दिया या और उसके साहित्यकारों ने भी राष्ट्र को रता में प्रयत्न किए थे। उन्हीं प्रयत्नों की दिशा में मेरा भी यह परिचय योग था।

इसमें बीनी धाक्रमण की प्रतिक्रिया में लिखे लेखों के अतिरिक्त कश्मीर के संकट सम्बन्धी कुछ निबंध भी हैं। धारा करता हूँ उनसे मेरे पाठकों को कुछ जानकारी बनेगी। कश्मीर का एक अति संक्षिप्त इतिहास भी इसी अथ इसमें दे दिया गया है। भारत की अखण्ड राष्ट्रीयता उत्तर में हिमालय द्वारा ही रक्षित और मीनित है। इसमें एक लेख - उस पर भी अनिर्धार्य हो गया। उस हिमालय को मीने भारतीय संस्कृति के यशस्वी प्रतीक महाकवि कालिदास की धारों देखने का प्रयत्न किया है। कालिदास ने भारत की एक आदर्श सीमा खींची है, पाब के संदर्भ में उसका ज्ञान भी अनावश्यक न होना। भारतीय अखण्डता के जो दर्शन संस्कृत के कवियों ने वैदिक की प्राकृतिक सुपमा और एकता में किए हैं उनकी ओर भी एक निबंध में संकेत कर दिया गया है। भारत की अखण्ड राष्ट्रभावना का चिह्न इसी सीपक के अन्तिम निबंध में हुआ है।

सूची

१	उपार भारत कृतघ्न चीन ।	३
२	हिमासय की देवभूमि पर शान्तों का ताण्डव	१७
३	दक्षिण-पूर्वी एशिया के राष्ट्र और चीन का खतरा	२६
४	चीनी हमला और दक्षिण-पूर्वी एशिया	३२
५.	भारत का वर्तमान संकट और राष्ट्रों की समाह	४५
६	चीन का सतही मार्क्सवाद और राजनीतिक भावनावात	५५
७	चीनी धाकड़ण और साहित्यकार	६३
८.	कश्मीर क इतिहास पर एक नजर	७५
९.	भारत की घमटावती कश्मीर	८३
१०	केसरिया कश्मीर	९६
११	पाकिस्तानी मोले और कुंहुम की प्रतिरक्षा	१०५
१२	पाकिस्तानी हमला और कश्मीरी धर्मद	११२
१३	द्विग्विजयी खलियादित्य और कश्मीर की सीमा	११८
१४	नदाब	१२५
१५.	कालिदास का हिमासय	१३३
१६	संस्कृत कवियों की राष्ट्रीयता—धरुण्ड भारत की सीमाएं	१४७
१७	सवेन राष्ट्रभावना	१५३

यस्मिन् यथा वर्तते यो मनुष्यः
तस्मिन् तथा वर्तितव्यं स धर्मः
मायाचारो मायया वारणीयः
साध्याचर साधुना प्रत्युपेयः ॥

—महाभारत

ओ मनुष्य जसा ब्यवहार करे उसके
साथ वैसा ही ब्यवहार करना उचित है,
यही धर्म है। धोखे का उत्तर धोखे से
देना चाहिए, साधु आचरण का साधु
आचरण द्वारा ।

१ | उदार भारत, कृतघ्न चीन ।

चीनी हमले से मन को घोट कहीं ज्यादा सगी थी, और नेफ्रा की दिगा से लौट जब घर में चीनिया की घनीमी कृतघ्नता की बात साबने लगा था तभी पांच बरस के मरे पोते न गले से मृतक कहला—बाधा हिंदी पानी भाई भाई !

घाव पर ठस भगी । जाना कि बच्चे की माँ ने उसे सिखाकर भेजा हागा और यह भी जाना कि बालक उस भयानक ब्यग्य की गहराई को महसूस कर रहा है जिसका गुमान न केवल मुझे ही नहीं था बल्कि सारे हिन्दुस्तान को नहीं था । हाँ, मुझ भी नहीं था । भिष्यप्राण ईसा को बत्र गुमान था कि उसका भिष्य ही एक दिन उसे आलिमों के हाथ सोंप देगा, उसकी बरतून से ही ईसा को कांटों का साज पहनना हीमा, उसी की मुद्रविरी से ईसा को अपना ही सबीम कर्षों पर डाना हागा फिर उसी पर टग जाना होगा ? बुनियास सीजर का कब गुमान था कि उसी का बेटा उसकी बोस में कटार बुसड़ देगा ? हलियोक्लीज को कब गुमान था कि उसका बेटा उसकी गिरी साग पर रख के पहिय षोड़ायेगा ?

निस्सवेह भारत का भी गुमान न था कि उसे बड़ा भाई कहने वाला चीन इस तरह उसकी पीठ में खजर भोंक देगा ।

मैंने भी नमी चीन से लौटकर उसके असीठ के सङ्घर्ष पर किताबें लिखी थीं—'भास चीन' 'कमकत्त से पीकिंग'। किसने नहीं लिखा ? किसने चीन के उस तीखे चहर को नहीं पिया जिसकी ऊपरी सतह पर मधु लरता था भीतर जिसके हस्ताक्षर घुला था ? चीन से लौटते ही हमारे उदारप्रेता अप्रतिम जननायक नेहरू ने कमकत्त में ऐलान किया था कि चीन ने शांति के विकास में शत्रुत्व के इन्धन उठाये हैं अपना देश भी समाजवादी विश्वास को धोर डग मारेगा। उसी की देखा देखी उहाने सरकारी अफसरों का बंद कोट के संवास का भी बियान किया। और उसी चीन ने जिसके नर-नारियों के सिद्धांत प्रदर्शनप्रेरित स्वागत ने हमारे पंडित का मन मोह लिया था आज भारत पर हमसा किया है !

मध्य एशिया के कुची में जब मिसु कुमारजीव घम साध रहा था तब चीनिया ने हमसा कर कुमारजीव को बंद कर लिया। कुमारजीव बोला—बिन मांगा बरदान मिला, से असो उद्य देश को जहाँ भगवान के उपदेश के सिध मेरे ग्यारहों प्राण जायत है। और हूणों के देग जान में शांति और दया के प्रबचन बहे कुमारजीव से। इन गुरुवाच्यों का प्रतिफल आज फल रहा है। चीन के हूणों ने भारतीय इतिहास क सुन हरे युग को रीढ़ तोड़ दी और बदस मे भारत ने चीन के पास शांति क दून भेज, अपने स्नेह के श्रोत जोस लिये जिससे देग विधि और पुष्ट हो ! मध्य एशिया की अगम्य मरुभूमि को भूत-भ्याग से ब्याकुल, सफरों की मर्तों के रक्त से प्यास बुझाते भारतीय साधुहूणों के देग तुनहुवांग पढ़पते और वाणी

के समुद्र से चीनी कानों को मुग्ध कर लेते । कहा उन्होंने कि हमारे देश पर जिसने बष्य मारा उसपर हम स्नेह का वर्षा करेंगे । और उस वर्षा का नतीजा आज हम भोग रहे हैं । सदियों चीन को भारत ज्ञान के अनन्त संवाद भेजता रहा जिसकी प्रेरणा से, जिसके विस्तार के लिये चीनियों ने प्रेस और कागज ईजाद किये और सवार में ब्यापि पाई । अजन्ता के अिन सदियों चीनी तुनुहुबांग की गुफाओं की दीवारों पर बरसते रह और आज हूणों और मगोसों से बर्वरता में बाजी मार से जाने वाले चीनियों ने अपन गुरुबेग भारत पर हमला किया है !

उदारता ने हमारे इतिहास को बार-बार बदला है और बार-बार हमने शान्ति को शपथ सी है । अपनी उदारता का ही परिणाम आज हम भुगत रहे हैं । मकमोहन सीमारेखा को हमने नहीं बनाया था, उसे हमारे स्वामी अघेबा और स्वय चीनियों ने बनाया था । हमें तो केवल उसका उत्तराधिकार मिला है जैसे स्वय चीनियों को चीन को उन सीमाओं का उत्तराधिकार मिला जिनके भीतर से तड़प-तड़प आज वे पडो-सियों को गुलाम बनाने के प्रयत्न कर रहे हैं । मकमोहन सीमारेखा संबंधी सधि पर उहोंने, उनके पूर्वगामियों ने अंधों के साथ हस्ताक्षर किये, आज के चीनी प्रतिनिधियों ने स्वतंत्र भारत के प्रधान मंत्री के साथ हस्ताक्षर किये हैं, मकमोहन सीमारेखा हमारी अग्यतम सीमारेखा है । हम उसे छोड नहीं सकते । जितनी भी कुरखानियां सभब होंगी और सभब वे वहां तक होंगी जहां तक जिस्म में बून की रबानी होगी, हम

सब करोगे और वह सीमारेखा जो स्वतंत्र भारत के हिमालय वर्ती प्रदेश की सीमारेखा है हम किसी हासत में न छोड़ेंगे।

हम भारत के चीन की शक्ति को जानते हैं, उसकी बर्बर नीति को जानते हैं उसकी कभी न घुमने वाली हविस की भाव को जानते हैं पर हम अपनी संभावनाओं को भी जानते हैं, और जानते हैं कि नये राष्ट्र के समिदागों की सीमाएँ नि सीम होती हैं कि हम अपनी उस मूलभूत देश प्रेम की प्रणय-धारा में उनकी बरतता को उनकी दरय भूल को बहा कर, डुबाकर रहेगे। नयी आजादी का स्वाद जिस राष्ट्र को मिला चुका है वह अपराधेय है भारत अपराधेय है।

पड़ोसी क धर्म से हम अलग-थलग थे। विश्वास था कि पड़ोसी और ऐसा पड़ोसी जिसे हमन जताब्दियां नहीं सहना सियों निबाहा है हमारी सीमा के प्रति बेवभूमि की भाँति अट्टाली रहेंगे पर हमारे विश्वास क बीज गमल जमीन में लग और आज हमारी भाँगे सहसा पुन गई हैं।

हमन अपनी ही प्राचीन भाषायों के अतुभूत-मर्यों का परि त्याग कर दिया था जिसका परिणाम आज हमारे सामने है। आणवय ने मोय राजनीति को आज न कोई सवा दो हजार साल पहल सवारत हुए कहा था कि पहला धनु पड़ोसी हुआ करता है वह 'अदृश्यमित्र' है क्योंकि उसकी बढ़ती हुई महत्वा काँक्षा का पहला प्रहार निरुत्तम पड़ोसी पर होता है समान सीमा क अशु राज्य पर और कि पहली सावधानी उसके प्रति बरतना चाहिए। उस नीति का परिणाम यह हुआ था कि तब हमारे पहलकों न हिन्दूकुश की आँटियों से चीन, मध्य एशिया

घोर घोरिया से उठने वाले सूक्रानों की बाग मोड़ दी थी । घोर उन्हें हिन्दूकुच साथ भ्रातृदरिया साथ, वधु की केसर की क्यारियों में अपने पाँचे हिराये थे । आज उसी नीति को भूलकर हम अपनी सोमाको भी समाप्त करने में उस प्रसमर्थ हो गये हैं ।

पर हम जानते हैं कि हमारी यह प्रसमयता मात्र क्षणिक रही है और आज हमारी प्रस्ती करोड़ प्राँचें मकमोहन सीमा-रेखा पर लगी हैं महाछ की सोकशौंगवर्ती सीमा पर घोर प्रस्ती कराड़ हाथ उसकी रक्षा क नित्ये प्राकृत हो उठे हैं ।

हम जानते हैं कि चीनियों की सख्या दर्यों की सख्या के परिमाण में है साथ ही उनके पास दर्यों का 'रक्तबीज' का ज्ञान भी है । रक्तबीज दर्यों का मोहनास्त्र था । मुरामुर युद्ध में जब देवता एक दर्य का मारत थे तब उसके शरीर से टपके हुए रक्त का एक-एक बूँद नया दर्य बन जाता करता था, रक्तबीज बन जाता था नव त्रिरेस युद्ध करता था । पर क्या उनका सहार होन से बच रहा ? निश्चय हमारी यह रापथ है हमारा यह प्रण है कि जब तक एक चीनी भी मकमोहन सीमा-रेखा के इस पार रह जायेगा, नेका की पमीन पर एक भी पीला मगोस चीनी रह जायेगा, हम बन न लेंगे । हम यह भी जानते हैं कि चीन के निमम विधाताओं की अपनी जनता के प्राणों का मोह नहीं उसकी जान की कोई कीमत नहीं । तभी तो ये अपने गाँव की उस जनता का क्रूरतापूर्वक सुगानों की मोह पर भारतीय मोर्चों की घोर होकर रहे हैं । घोर इस जनता को घर का माह भसा हो फँसे, जिसके प्रति यदान्वित हो के

सब करेंगे और वह सीमारेखा जो स्वतंत्र भारत के हिमाचल
बर्तौ प्रदेश की सीमारेखा है, हम कितनी हासत में न छोड़ेंगे।

हम चाज के चीन की शक्ति को जानते हैं उसकी बबर
नीति को जानते हैं उसकी कमा न बुझने वाली हबिस की
भाग को जानते हैं पर हम अपनी सभावनाओं को भी जानते
हैं और जानते हैं कि नये राष्ट्र के बसिदानों की सीमामें
नि सीम होती है कि हम अपनी उस भूसभूत देश प्रेम की
प्ररणा-धारा में उनकी बधरता को उनकी दरय भूस को बहा-
कर सुयाकर रहेंगे। नयी चाजवादी का स्वाद जिस राष्ट्र को
मिस पुका है वह अपराजेय है भारत अपराजेय है।

पड़ोसी के घम से हम अत्रतक चुप थे। विस्वास था कि
पड़ोसी और एसा पड़ोसी जिसे हमने गताश्रियों नहीं सहसा
श्रियों निवाहा है हमारी सीमा के प्रति बबभूमि की भाँति
श्रदाशील रहेगा पर हमारे विस्वास के बीज गसत जमीन में
सय और चाज हमारी घाँसे सहसा सुस गई हैं।

हमने अपनी ही प्राचीन भाषायों के अतुभूत सस्यों का परि-
त्याग कर लिया था जिसका परिणाम चाज हमारे सामने है।
आणक्य ने मीय राजनीति को चाज न कोई सया दो हजार
साम पहल संवारत हुए कहा था कि पहला शत्रु पड़ोसी हुआ
करता है वह 'अश्रुतयमिथ' है क्योंकि उसकी बड़ता हुई महत्वा
बाधा का पहला प्रहार निकटतम पड़ोसी पर हाता है समान
सीमा के अश्रु राज्य पर और कि पहली सावधानी उसके प्रति
सरतना चाहिये। उस नीति का परिणाम यह हुआ था कि तब
हमारे पहलकों ने हिन्दूकुस को चोटियों से भीम मध्य एशिया

चीन भारत पर गोसे बरसा रहा था, निश्चय राष्ट्रों की समझ में नहीं आया क्योंकि प्राचिन इतिहास ही दूर मानव जाति के इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं कि जब हमसावर गोसे बरसा रहा हो उसका अधिकार मदद में उसकी पीठ ठोकें । वस्तुतः यह उदाहरण दूणों को चढ़ाई के जवाब में चीन पर स्नेह की बर्पा करन वाले उदाहरण से नहीं सामिसास है । धीर यह कुछ प्रकारण नहीं कि भारत के इस आचरण पर, जो निस्संदेह नैतिक आभरण था, भारतीय वैदेशिक नीति के सदम में नितान्त अनुकूल—ये राष्ट्र आश्चयपूर्वक दांतों तले उगमी दवा लें जो हमसे संभवतः कहीं सही चीनी प्रकृति का राऊ पा चुके हैं, धीर जो इस बात पर सन्नद्ध हैं कि वे किसी हासत में इस इन्सानियत के दुश्मन चीन को राष्ट्र सभ में बठने का अधिकार न देंगे ।

भारत को भी शामद अपनी इस नीति पर विचार करना होगा कि क्या ‘जो तोकूँ काँटा बुव ताहि बोइ तू फूल’ का सिद्धांत आज भी कोई महत्थ रखता है । सभा में बैठने की एक शिष्टता होती है, उसी शिष्टता से उसमें बठने वाला सभ्य कहसाता है—राष्ट्र सभ की सभा में बैठन की सभ्यता हमसापरस्त, शक्तिपरस्त बवंर चीन में है क्या ? मैं नहीं समझता कि भारत, चीन को राष्ट्र सभ में बैठाने की सहायता न कर किसी अंग में अपने सनातन शान्तिप्रिय वैदेशिक नीति का प्रतिबून आभरण करनेवाला कहसायेगा । भारत आज आक्रमण का उत्तर प्रत्याक्रमण से दे रहा है निश्चय सभ्य मानवराष्ट्रों की पंक्ति में बैठने का, मानव स्वतन्त्रता के बिरोधी चीन के

दूसरों के घरों के प्रति ध्यात्मिक हों ? जो चावल चनेना घर पर है वही मोर्चों पर है । जो घरों से उखाड़ जा चुके हैं उनके लिये क्या सकता मकान का दियावाँ क्या हिमालय की ऊँचाइयाँ, क्या निम्नत भारत के मोर्चों । काश कि वे भयप्रेरित चीनी किसान जान पाते कि यह सड़ाई क्लृप्नता का घाबिरी सबूत है, कि वह सीमा पार की अमीन है दूसरों को देवभूमि जिस पर वे अपना खून बहा रहे हैं, उनके लिये जिनके सामने शिम्दगी का कोई माल नहीं । वनाँ क्या यह मुमकिन था कि जिन सतरनाक ऊँचाइयों पर पहाड़ी खम्बर तक चूक जान के डर से घसने की हिम्मत न करें वहाँ अपना हथेलियों पर गरीब चीनी किसान तोप गाड़ियों के पहिये संभालें ।

काश ! वे जान पाते कि यह सड़ाई गोमा की सड़ाई नहीं, इन्मानियत के खिलाफ सड़ाई है उस उदार पड़ोसी की पीठ में छग भोकना है जो राष्ट्रों की पाँत से निवास चीन को फिर उनकी जमात में बिठाने का प्रयत्न आज भी कर रहा है जब उनकी सफा लो पेनानी पर चीन हथौड़े बरसा रहा है । अभी कुछ हफ्त नहीं गुजरे जब संयुक्त राष्ट्र संघ की बैठक में जोरिन के प्रस्ताव का भारत ने चीन के मसल पर समर्थन किया था और चीन के राष्ट्र संघ में प्रवेश में सहायता की जो ठीक तभी जब चीन ने मेनमाहन रेखा की परवाह न कर उस सौम्र जाने का हुकम अपनी सत्ता को जारा किया था और जब वह चीनवाँ नेता जोत चुना था जब उसके तोषांग में सने पर हमारे अवाम खुन्न के मार्च पर जुक रहे थे ।

भारत की ठीक उस दसा में चीन की यह सहायता, जब

२ | हिमालय की देवभूमि पर दानवों का तारुडव

धमासान अभी धमा है। हिमालय के मोर्चों पर जवान दूध चुके हैं। हिमालय की सफेद बर्फीसी घाटियां हमसावरों और वसिदानियों के खून से रंग गई हैं। धमासान अभी धमा है।

पर धमासान बन्ध नहीं होने का जब तक देवभूमि हिमालय की भारतीय सीमा पर एक भी हमसावर चीनी कायम है। हम जानते हैं कि चीन की जनसंख्या बढ़ी है, पर यह भी जानते हैं कि वह मात्र जनसंख्या है जनशक्ति नहीं, क्योंकि उसके पीछे चीन की जनता नहीं मात्र जगवाज सरकार हैं—पुराने चीन 'बार साड़ों' के धायुनिक प्रतिनिधि—जिनकी दूसरों की जमीन हड़प सने की हविस नहीं मिटी और जो सगीनों की मोक से अपने गांवों की जनता को भारत के मोर्चों पर ठेसे जा रहे हैं। न उनके पास फौजी हुनर है और न समिक ईमानदारी पर उनकी सैनिकों की धाराओं पर धाराएं बढ़ी धा रही हैं, उनकी तोपें धाग की बाड़ों पर बाड़ें दागती जा रही हैं। मगोलों की तरह, उम हणों की तरह, जो बार-बार कभी भारत की सीमाओं से टकराते रहे थे और अंत में उसके

दावे का, भी वह समझन न करेगा ।

भारत ने उदारता की सीमायें साँभ ली हैं जिसका मतीजा यह हुआ है कि चीनियों ने उसे चापर समझ लिया है। वस्तुतः चापरता और मानवीयता की सीमायें परस्पर लगी रहती हैं और एक के आचरण से दूसरे का धोखा हो जाना कुछ अजब नहीं । पर उस धोखे के कारण भी हमी होंगे जब तक कि हम चीनियों के प्रति यह स्पष्ट न कर दें कि हमारी इन्सानपरस्ती युबविसी नहीं थी, इन्सानपरस्ती थी, पर अगर हमारे धोखे और एक नहीं पाँच पाँच धोखे का—जिसकी बार-बार चीन के विधाताओं ने दापय ली थी—धर्म्य व दैन्य लगावें तो हम भी उस घळता का उत्तर उस नीति से देंगे जिस नीति का उप योग सभ्य और सज्जन को जयतब मजबूर होकर करना पड़ता है । और हमन उसका समूत विया है दे रहें हैं देठे जायेंगे । हमारे आसीस कराड़ मर-नारी, आवालवृद्ध अपने देश की उसकी सीमायाँ की अपना बड़ो मुरबानिया से कमाई आजादी की रदा रक्त की अठिम खुद तक करेंगे । यह हमारी भीष्म प्रतिना है यहा हमारी नाम दापय है ।

जय हिन्द ! जय भारत !

हिमालय की देवभूमि पर दानवों का तारुढव

धमासान अभी धमा है । हिमालय के मोर्चों पर अवान
जूम चुके हैं । हिमालय की सफ़द बर्फ़ीली घोटियां हमसावरों
धौर अक्षिशानियों के खून से रग गई हैं । धमासान अभी
धमा है ।

पर धमासान बन्द नहीं होने का जब तक देवभूमि हिमालय
की भारतीय सीमा पर एक भी हमसावर चीनी कायम है ।
हम धामते हैं कि चीन की जनसंख्या बड़ी है, पर यह भी जानते
हैं कि वह मात्र जनसंख्या है जनशक्ति नहीं क्योंकि उसके
पीछे चीन की जनता नहीं, मात्र अगबाध सरकार है—पुराने
चीन 'वार साडों' के ध्राष्ट्रिक प्रतिनिधि—जिनकी दूसरों की
जमीन हड़प लेने की हविस नहीं मिटी धौर जो सगीनों की
नोक स अपने गाँवों की जनता को भारत के मोर्चों पर ठेले
जा रहे हैं । न उनके पास फौजी हुनर है धौर न सनिक
हिमानदारी, पर उनकी सैनिकों की धाराधों पर धाराए बड़ी
धा रही हैं, उनकी तोपें धाम की बाढ़ों पर बाढ़ें धाराती जा
रही हैं । मगोनों की तरह उन ठुणों की तरह, जो वार-वार
कभी भारत की सीमाधों से टकराते रहे थे धौर धत में उसके

दावे का, भी वह समर्थन न करेगा ।

भारत ने उदारता की सीमायें साँध ली हैं जिसका तर्तीजा यह हुआ है कि चीनियों ने उसे कायर समझ लिया है। अस्तुत कायरता और मानवीयता की सीमायें परस्पर लगी रहसी हैं और एक के घाबरण से दूसरे का भोसा हो जाना कुछ अजब नहीं। पर उस घोर के कारण भी हमी होंगे जब तक कि हम चीनियों के प्रति यह स्पष्ट न कर दें कि हमारी इन्सानपरस्ती पुनर्विती नहीं थी, इन्सानपरस्ती की पर अगर हमारे घीस और एक नहीं पाँच-पाँच घीस का—जिसकी बार-बार चीन के बिधाताघों ने अपय सी थी—अथ व अन्य सगावें तो हम भी उस घटता का उत्तर उस नीति से दग जिस नीति का उप याग सम्य और सज्जन को जयतय मजबूर होकर करना पड़ता है। और हमने उसका सबूत दिया है दे रहे हैं, घेते जायेंगे। हमारे घामीस करोड़ नर-नारी, घावासघुद घपने देश की उसी घीमाघा की घपना बड़ी भुग्घानियों से कमाई घाजावी की रदा रगत की घंत्रिम घुंद तक करेंगे। यह हमारी भीष्म प्रतिगा है यही हमारी माघ अपय है।

जय हिन्द ! जय भारत !

समाप्तान घनी घमा है। हिमालय के भागों पर जवान
जुन पुके हैं। हिमालय की मफ्रे बफ्रीमी पाटियां हममावरों
और बसिदानिया के खून से रग गई हैं। समाप्तान घनी
घमा है।

पर समाप्तान बन्द नहीं हान का जब तक देवभूमि हिमालय
की नारसीय सीमा पर एक भा हममावर भीनी कायम है।
हम जानते हैं कि चीन की जनसंख्या बढ़ी है, पर यह भी जानते
हैं कि यह मात्र जनसंख्या है, जनशक्ति नहीं, क्योंकि उसके
पीछे चीन की जनता नहीं, मात्र जगबाइ सरदार हैं—पुराने
चीन 'चार माहों' के धातुनिक प्रतिनिधि—जिनकी दृष्टियों की
उमान हृदय मने की हृदय नहीं मिटी और जो सुमीनों की
नाक से घनन गाँवों की जनता का भाग्य के भागों पर ठपे
जा रहे हैं। न उनके पास धीरी हुनर है और न मैनिक
ईनालदारी पर उनकी सेनिकों की धागाओं पर धाराण बढ़ी
घा रही है, उनकी माने धातु की बाड़ों पर बाड़ें दागती जा
रही हैं। मयोनों की तरह, उन हुनों की तरह, जो बार-बार
कनी नाख की सीमाओं से टकराते रहे वे और धन में उसक

उत्तर में बैठ-गए गये थे। उनके शगेज मे चीन से आस्ट्रिया तक घरज से मास्को तक की जमीन पीत ली थी—मास्को और सैनिकघाद में तातारों ने महिजदें बड़ी कर ली थीं—(मास्को और सैनिकघाद सावधान हो जाएं, क्योंकि जिस घजदहा ने अपनी पूछ ली चोट भारत पर मारी है उसके जवड़े रूस की ओर हैं) पर शगेज ने तब के हिन्दुस्तान की हकीकत समझी थी और सिधुनद क तीर से बहु वापस सौट गया था।

पर घाज के चीनी 'आर-साइं' घाज क भारत की हकीकत नहीं जानते और अपने घाज के मोर्चे भारत की सरखुव पर दूर वार बढ़ाये घा रहे हैं घायब इस कारण कि वे जानते हैं कि वे तिब्बत के वार हिमासय की उन बर्फीसी ऊचाइयों पर घाज समा रहे हैं जहां वे महज घाज ताप सखेंगे और उसके अपने घर में सग जाने का डर न होगा। पर घाज यह सीटैगी भारत के उन्वासों पवन का सुफान लिये लौटेगी, और मारा चीन दावागि का शिकार हो उठेगा। निनवे के असुर सम्राटों न जब इजरायल पर घग्नि के भांड उसट धुग्मनम को घग्निघान कर दिया था तब महुषी नबी नाहोम की घावाज निनवे के गिलाक गुज उठी थी असुरों के जोम और अहंकार का पिबकारता— 'पिबकार उस नगर को। पिबकार उस खुनी मगर निनवे का। देल निनवे में तेरा बिराधी हू घान्य घग्नु और मैं तेरे नगपन का राज घोस दूंगा तेरी घर्वरता का डवन बाव सिबाय को उसट दूंगा और तेरी नमनता का राट्टों में मदाघोड़ कर दूंगा राग्यो पर तेरा बेहघार्ई जाहिर कर दूंगा। और तेरे ऊगर तेरा ही गुसीज बरस पडगा

तेरे अहंकार को डक लेगा, तुम्हें घिनौना बना देगा और तू अपनी ही जलालत पर साकता रह जायगा। और ऐसा होकर रहेगा जान से तू, अभिशप्त निनवे, कि आज जो तेरे हमगुजर हैं, तुम्हसे बानू मिलाये चम रहे हैं, य ही एक दिन तेरी छूत मांगे, तेरा मुह देखने से परहेज करेंगे, तेरे साथ से दूर भागेंगे, और बिस्ता-बिस्ताकर ऐसान करेंगे कि निनवे नष्ट हो गया, घूम में पडा है जमींदोज हो चुका है। फिर कौन तुम्ह पर आसू बहायगा ? देख निनवे कान खोलकर सुन से—तेरे दाशिन्यों में बस औरतें रह जायेंगी, मद तलवारों के घाट उतर जायेंगे, तेरे घेर के द्वार दोनो फाटक दो घोर दुश्मनों के सामने अपने-आप खुस जायेंगे, आग की सपटें तेरे शहरपनाह को तुम्हे घरने वाली ऊंची दीवारों को खाट जायेंगी—असुरों के राजा, तू भी सुन ले—तेरे गांवों के सियार भेड़ों के चरवाहे सदा के लिए सो जायेंगे तेरे अभिजात अमीर घूम म मिस जायेंगे, तेरी कौम टुकड़े-टुकड़े होकर, बर्बाद होकर, पहाड़ों पर बिखर जायेंगी और कोई उसका पुरसाहास न होगा, कोई नामसेवा न बंधेगा फिर उनको हाँककर बाई इकट्ठा न कर पायेगा और तब निनवे, तेरे घाघ का कोई भरहम भी न होगा, और तारा घाघ गहरा है और ऐसा गहरा कि तेरे दर्दसे बिन्दी की आह न निकसेगी, सुनने वाम तानी बजा उठेंगे, कारण कि जमीन पर मसा ऐसा कौन है जिस पर तारा बहर न बरसा हा ?

यही बात आज मैं पिकिंग म कह रहा हू जो निनवे का, खग्रा में अमाधारण वाग्मि है। और मैं नाहोम नहीं हू,

नहीं नहीं हूँ फकीर नहीं हूँ, प्रकृत भारतीय राष्ट्रीयता का हामी मार्क्सवादी नागरिक हूँ। पहले कमी चीनी साम्यवाद ने मुझे गहरा प्रभावित किया था जैसे उसने हमारे प्रधानमंत्री पंडित नेहरू को प्रभावित किया था जिन्होंने चीन से सीटकर उसी प्रभाव के सफल पर अपने देश में उसी समाजवादी राष्ट्र की कल्पना की जैसे चीन से सीटकर मैंने खुद कितानें सिक्की—
 “मास चीन , “कलकत्ते से पिबिंग — पर आज मार्क्सवाद के बुद्धमन नतिक मार्क्सवाद धास्वा के बुद्धमन माघो घोर पाऊ-एन-साई मे बहु चोल का सपना ठोड़ दिया है। निश्चय चीन का मार्क्सवाद न मार्क्स का है, न बेनिन का घोर न उसकी राष्ट्रीयता सुनिश्चित सेन की है। उसका मार्क्सवाद उस अजगर का है जो चीनी भूख का प्रतीक है घोर जो भारत की उत्तरी सीमा पर आज अजग की सपटें उगम रहा है।

ऐसा नहीं कि भारत न उस अजगर को जाना न हो। भारत ने उसे जाना है, उसकी दुनीति का अपनी प्रशांत नीति से दमन किया है उस नीति का सहस्राब्दियों पाठ पढ़ाया है, उसे वसिष्ठ की तरह बूहे न बिस्वी बिस्वी से दुला कुसे से बार बनाया है पर वही वसिष्ठ का बनाया घोर अजगर अपने बियाठा वसिष्ठ को ही या जाने के उपनम करे तो वसिष्ठ को उसे फिर बूहा बना देने में अजग भी संकोप न होगा।

संकोच वसिष्ठ को हुमा भी नहीं है क्योंकि घामू का यमकृष्ट अय हिमालय की चोटियों पर जा चढ़ा है घोर निरं सर अग्निवर्णी मे हमारी बीरवा के प्रतीक घोर पहचये—बौहान प्रतिहार, परमार घोर पावुनय—निकासता जा रहा है—य

कुछ प्रकारण नहीं कि पश्चिम से आहूत 'चीन' के हाथ में आश्रय भारतीय रिशामों की बागडोर दे दी गई है और ये रिशामे अब हिमालय की थोटियाँ साँघकर रहेंगे ।

चीनी—(अब मैं यह लेख लिखा रहा हूँ मेरा पाँच बरस का नाती मेरे पास बैठा चुपचाप सुन रहा है और अभी-अभी जैसे ही मैं 'चीन' शब्द का उच्चारण किया और आगे की बात बोलने के लिए उरा दम लिया तब तक बच्चे ने हल्के से कह दिया है—“चीन”—सच, चीनी बोलें । और निश्चय इस पाँच बरस का बालक का यह उद्गार भारतीय जनता का उद्गार है ।) —चीनी निम्नलिखित जानकार हैं, अनेक प्रकार की दानवी मायाओं के जानकार । वे जानते हैं कि पहली थोट पड़ोसी पर करनी होती है । प्रणा के पहले घस्त्रवासी नृपति और कूनीतिवादी मेकियावेसी के परम शिष्य फ्रेडरिक महान् ने जब बाल्तेयर से कहा था कि मैं मेकियावेसी का खडन सिखने का विचार कर रहा हूँ तब ब्यम्पकार बोल्लेयर ने धीरे से मुस्कराकर कह दिया था—बेपक, मेकियावेसी जैसा गुरु अपने शिष्य से खडन की स्वाभाविक ही अपेक्षा करेगा और उस ब्यम्प का थोट को समझ फ्रेडरिक न मेकियावेसी का खडन तो नहीं सिखा था, आस्ट्रिया की मारिया थेरेसा का अनिभावकत्व कर उससे साइलिया जबर चीन लिया था । चीन ने गुरु-वाक्य का खडन भी किया है, उसकी बढाई राजनीति के दाब भी उसी पर उलट दिये हैं । कौटिल्य न सिखा था—पड़ोसी प्रकृत्यमित्र होना है उससे सावधान रहा दिग्भ्रम में पहली थोट उसी पर करनी होगी । भारत ने तीव्र ही पीढ़ी में

इस नीति का उलट दिया था और आज के अन्तर्राष्ट्रीय शांति नीति के गुरु अशोक ने कौटिल्य को पीछे कर अपने गगनचुम्बी स्तंभों पर अमर चट्टानों पर ऐलान किया था—अब तक का भेरीघाप अब धमधोप होगा विज्जिजय अब धमबिजय होगी । माया फडरिक् की सीमासा से भी सीमित नहीं क्योंकि उसने अहन भी किया गुरुवेश पर आक्रमण भी । इधर महीने-भर स पिकिंग का रेडिया निरंतर मूठा प्रचार करता रहा है अपने आक्रमण को आत्मरक्षा घोषित करता रहा है निरीह बडे भारत को हममावर और आजात कहता रहा है । सो वह जानकार है भूट की माया का जानकर ।

और नैतिकता की कोई सीमा उसे बाध नहीं सकती क्योंकि आज का चीन नैतिकता के प्रतिबंध को प्रतिबंध नहीं मानता । दाविप्रिय पड़ोसी की युद्ध विरक्ति उसके घाड़े नहीं आ सकती जमी की दी हुई पंचशीस की नीति की बाहुग म घापण सेन वारा चीन पंचशीस का मंत्र देने वासे भारत पर ही आक्रमण करेगा क्योंकि आज उसन उस नीति की व्यवस्था को (कि पूंजीवादी और साम्यवादी देशों का इस घरा पर समान रूप से सहप्रस्तित्व हो सकता है और जिसकी उती का पड़ासो घोर रहनुमा भाई उस घापणा करता है) रही ने टाकरे म डास दिया है । वह आज खुसा ऐमान करने समा है कि महाम्पिरद का कोई धय नहीं सहप्रस्तित्व संभव रहा ।

या यह गाहग का बात है कि ऐसे गुरु भारत पर वह पीछे म आयात कर जब भारत अपनी पीठ का नित्र राष्ट्र

चीन द्वारा संरक्षित मान निमय सा रहा हो । सच यह साहस की बात है कि पड़ोसी मित्र राष्ट्र कृतघ्नता की सारी सीमाएँ साँप जाएँ, कृतघ्नता के सारे मिसाल भूँट कर दे । सोचिये जरा इसके विपरीत भारत के भी उस कठिन साहस की बात जब चीन के आक्रमण के बावजूद, रूसी प्रतिनिधि जोरिन की पुटीसी बातों के बावजूद, राष्ट्र संघ में चीन का बिठाने के प्रस्ताव का समर्थन कर उसने उसके अनुकूल वोट दिया है । पर अब भारत ने भी उस बंदी को साधारण महसूस किया है जिसका उसे गुमान भी न था और उसने कौटिल्य की चेतावनी याद कर अपने स्वत्व पर 'आफ़सोदय' अधिकार तक अशोक की नीति का बदलकर फिर अपना राजनीतिक नारा बनाया है—घर्मघाप फिर भेरीघोष होगा घमविजय विजित सीमा-बिजय होगी और भारत अपनी देवभूमि हिमालय की घरा सेकर रहेगा ।

पड़ोसी के प्रति इस दुर्भावना की सच्चाई चीन अपने रेडियो प्रचार द्वारा बना रहा है । पर एशिया—विशेषतः दक्षिण-पूर्वी एशिया—बिचस हो उठा है । कभी वे चीन के एक बग का नारा था कि चीनी वर्ग की बोलियाँ बोलने वाले सारे राष्ट्र चीन के उपगोत्री हैं उसके साम्राज्य के सीमावर्ती सामंत हैं उसकी 'मंडलनामि' के मडलावीय हैं । इस चीनी अरूपरिधि में पूर्वी सीमा की प्रायः सारी जातियाँ हैं—सिक्किम भूटान बर्मा, तिब्बत, थाईलैंड मलाया कंबोडिया, वियतनाम लाओस सभी । तिब्बत को चीन आत्मसात कर चुका है बर्मा में उसने सैनिक संघि कर ली है सिक्किम और तिब्बत के

इस नीति को उमट दिया था और आज के अन्तर्राष्ट्रीय शांति नीति के गुरु अशोक ने कौटिल्य को पीछे कर अपने गगनचुम्बी स्वर्गों पर अमर घटानों पर ऐतान किया था—अब तक का मेरीचोप अब अर्मधोप होगा, दिग्विजय अब धमविजय होगी। माओ फ्रेडरिख की सीमाओं से भी सीमित नहीं क्योंकि उसने सबन भी किया गुरुवेदा पर आक्रमण भी। इधर महीने भर से पिकिंग का रेडिया निरंतर झूठा प्रचार करता रहा है, अपने आक्रमण का आत्मरक्षा घोषित करता रहा है निरीह बैठे भारत को हमलावर और आक्रांत कहता रहा है। सो वह बानकार है झूठ की माया का जानकर।

और नतिकता की कोई सीमा उसे बाध नहीं सकती क्योंकि आज का भीम नतिकता के प्रतिबन्ध को प्रतिबंध नहीं मानता। शांतिप्रिय पड़ोसी की मुझ विरक्ति उसने घाडे नहीं घा सकती उसी की ही हुई पञ्चदीप्त की नीति की बाहुग में आपस अने वासा भीन पञ्चसोस का मंत्र देने वाले भारत पर ही आक्रमण करेगा क्योंकि आज उसने उस नीति की व्यवस्था को (कि पूंजीवादी और साम्यवादी देशों का इस धरा पर समान रूप से सहप्रस्तित्व हो सकता है और जिसकी उसी का पड़ोसी और रहनुमा भाई स्वस घोपणा करता है) रद्दी के टोकरे में बास दिया है। वह आज खुला ऐतान करने लगा है कि सहप्रस्तित्व का कोई अर्थ नहीं सहप्रस्तित्व संभव नहीं।

सो यह साहस की बात है कि ऐसे गुरु भारत पर वह पीछे से आघात करे जब भारत अपनी पीठ को मित्र राष्ट्र

चीन द्वारा संरक्षित मान निमय सो रहा हो । सच यह साहस की बात है कि पड़ोसी मित्र राष्ट्र कुतूहलता की सारी सीमा सांघ जाए, कुतूहलता के सारे मिसाल भूठ कर दे । सोचिये अर इसके विपरीत भारत के भी उस कठिन साहस की बात ज चीन के आक्रमण के बावजूद, रूसो प्रतिनिधि जोरिन के पुटोली बातों के बावजूद, राष्ट्र सघ में चीन का बिठाने के प्रस्ताव का समयन कर उसने उसके अनुकूल वोट दिया है । पर अब भारत न भी उस बंदी का साधार महसूस किया । जिसका उसे गुमान भी न था और उसने कौटिल्य की चेतावनी याद कर, अपना स्वत्व पर 'आफलोदय' अधिकार तक प्रयोग की नीति को बदलकर फिर अपना राजनीतिक नारा बनाया है—असहयोग फिर भेरीघाप होगा अमविजय विजित सीमा विजय होगी और भारत अपनी देवभूमि हिमालय की धर लेकर रहेगा ।

पड़ोसी के प्रति इस दुर्भावना की सच्चाई चीन अपने रेडियो प्रसार द्वारा दवा रहा है । पर एशिया—बिदोयत दक्षिण-पूर्वी एशिया—विचल हो उठा है । कमी के चीन के एक वर्ग का नारा था कि चीनी वर्ग की बोलियां बोलने वाले मार राष्ट्र चीन के उपगोत्री हैं, उसके साम्राज्य के सीमावर्त सामंत हैं, उसको 'महसनाभि' के महसाधीय हैं । इस चीन अक्रपरिधि में पूर्वो सीमा को प्रायः सारी आतियां हैं—सिक्किम, भूटान, बर्मा, तिब्बत थाईलैंड मलाया, कंबोडिया, वियतनाम, लाओस, सभी । तिब्बत को चीन आत्मसात कर चुका है । यम उसने क्षणिक संधि कर ली है. सिक्किम और तिब्बत

प्रति विश्वास की घोषणा की है वियत्नाम और साओस उसके अपने हैं, थाईलैंड और मलाया की इन सारे देशों को हड़प लेने के बाद विसात ही क्या है ? सिक्किम और भूटान का भाग्य भारत के नेत्रों और आसाम से बंधा है और बर्मा के साथ चीन की सधि कब तक टिकी रहेगी, यह कहना प होगा, विशेषकर जब वहाँ पन्द्रह प्रीसदी चीनी रहते हैं और जब बर्मा का प्रायः समूचा व्यापार कुछ भारतीयों के हाथ में, अधिकतर चीनियों के हाथ में है। नेपाल के नव राज्य के प्रति चीन ने जो रुख लिया है उसने साम्यवादी राष्ट्रों को भी हिरत में डाल दिया है यद्यपि साधारण गणतान्त्रिक राष्ट्र भी इसको साकू देस रहे हैं कि अन्न और अभाव का उपक्रम चल रहा है कि चूहा बिस्की की मुछों से खेस रहा है रोऊ-रीऊ उसको प्यार में नोंब रहा है, और बिस्की अपना साड़ उस पर मिछा कर लिए जा रही है। और यह नेपाल का चूहा भारत के बहिरंग में बिस बनाकर रह रहा है, और सार्थों घान उसके विस में है।

हिन्देशिया नेपाल से कहीं ज्यादा गुमराह है। शिकार का राजनीति के आस में अपने भाप आ फंसने का वह अपना उवाहरण भाप है। वही एक राष्ट्र है जहाँ बोहरी नागरिकता व्यवस्थित है। बड़ी संख्या में हिन्देशिया में रहने वाले चीनी हिन्देशिया के भी नागरिक हैं चीन के भी, और एक दिन वे हिन्देशिया को समूचा सीस जायेंगे। बाहिर है कि जैसे कभी हिटसर ने जर्मनी के निकट के देशों में जहाँ-जहाँ जर्मन रहते थे वहाँ-वहाँ सूडेटन-जर्मन राष्ट्र की कल्पना की थी, वैसे ही

प्रायः माओ ने भी समूचे दक्षिण-पूर्वी एशिया में बसने वाले चीनियों के नाम पर सूबेटन चीन का सपना देखा है। पर निश्चय उसका यह सपना वैसे ही टूटकर रहेगा जैसे हिटलर का टूट गया था।

प्रायः भारत जग उठा है भारत खूब सोया, हमसा हो चुकने पर भी कुछ काम सोठा रहा, चाहे उनींदी नोंद ही सोसा रहा हो, पर प्रायः वह जाग उठा है। और चाहे 'महिपुच्छ' वृत्र कितना भी भयङ्कर हो, चीन का भ्रष्टदहा कितना भी बिगाल हा, वह उस पछाड़कर ही रहेगा, वज्र द्वारा उस दानु पुत्र वृत्र को मष्ट कर देगा, भ्रष्टदहे के जहरीले दाढ़ उखाड़ देगा। और यह चीनी 'मत्तगयन्द' सावधान हो जाय क्योंकि उसने सिंह का छड़ा है और सिंह जग पडा है। हूणों से एक बार जब भारत टकराया था तब घरा हिल उठी थी—और उसकी भुजाओं ने भारत बना दिया था—हूणैः समागतस्य समरे दौर्म्या घरा कम्पिता। भीमावर्तकरस्य—चीनियों का पहसा हमसा भारत ने वैसे ही लिया जैसे स्कन्दगुप्त ने कभी हूणों का लिया था, पर धीध्र ही उसका उत्तर यशोधर्मा ने हूणों का देश से निकालकर अपनी विजय की प्रशस्ति मदसोर में स्थापित स्तम्भ पर खुदवाकर दिया था। अब हमारा विजय स्तम्भ हिमालय की चोटियों पर स्थापित होगा।

जय हिन्द ! जय भारत !!

दक्षिण-पूर्वी एशिया के राष्ट्र और चीन का खतरा

भारत पर चीन का हमला खास मतलब रखता है। पहले तो यह समझ लेना चाहिए कि यह सरहद्दी कमलों का निपटारा नहीं चीनी प्रसरणीति से संयोजित हमला है जिसने दक्षिण-पूर्वी एशिया के राष्ट्रों की हाल की बीती आबादी को खतरे में डाल दिया है। पिछली दो सदियों से दक्षिण-पूर्वी एशिया के राष्ट्रों के ऊपर यूरोपीय साम्राज्यवाद और औपनिवेशिक सत्ता का प्रभुत्व रहा है जिसके जुए को सूनी कुरबानियों से इन मजबूत राष्ट्रों में अपने बड़े कर्षों से उतार फेंका है। चीन और जापान उस विवेकी प्रभुता से प्रायः मुक्त रहे हैं। जापान तो सधिया मुक्त रहा है पर चीन पर यूरोपीय और अमरीकी कसमकस का दौरा खासा रहा है यद्यपि भारत अथवा दूसरे दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों की तरह वह कभी विवेकी सत्ता में नहीं आ सका था।

जापान की स्थिति बिलकुल दूसरी रही है। उसने अनेक रूप से अपने को इम्पेरियल की सत्ता का अनुगामी समझा। जैसे यूरोप के पश्चिम में इम्पेरियल की स्थिति एकाकी रही है वैसे ही जापान की भी एशिया के पूरब में एकाकी रही है और उसने

भी अनेक प्रकार से साहस और मूर्ख से अपनी शक्ति बढ़ानी चाही है। अपना साग दासनविधान उसने इंग्लैंड के अनुस्यू साधा और उसी की देखा-देखी पूरब में साम्राज्य निर्माण की व्यवस्था की। एक सामान्य राजनीतिक सिद्धांत यह रहा है कि साधारणतः तब परिधि में रहने वाली कीयवान् जाति ही अपनी बढ़ती हुई आबादी की उदरपूर्ति और नई बस्ती के लिए साधार प्रसरणीति का व्यवसाय करती है और बाद में जब खून का स्वाद पाए दोर की तरह उसे उपनिवेशों के निर्माण का धम्का सग जाता है तब वह इतना आवश्यकता के लिए नहीं जितना साम्राज्य के ऐश्वर्य के लिए, साम्राज्यवादी प्रसरणीति को अपनाती है। यही स्थिति वस्तुतः सत्रहवीं अठारहवीं सदियों के प्रसरमान यूरोपीय राष्ट्रों—स्पेन इंग्लैंड जर्मनी, फ्रांस, पुतगाम—की रही है। जर्मनी के उपक्रम इस दिशा में सबसे पीछे हुए। इस सिद्धांत के अनुसार स्वाभाविक ही यह विपरीत मस्य भी निष्कृत रूप में प्रायः अकटय माना जाता था कि जिस राष्ट्र की भौगोलिक सीमाएं बढ़ी होंगी और उन सीमाओं पर अधिकार स्वयं उस राष्ट्र का होगा उसे प्रसरसिप्सा न होगी, उसकी आबादी की आवश्यकताएं उसकी सीमाओं में ही उत्पन्न वस्तुओं से पूरी हो जायगी और अपनी औद्योगिक व्यापार की वस्तुषा की सपथ तक के लिए उसको साम्राज्य के ऋडे के नीचे बाहरी बाजार बढ़ने न पड़ेंगे। पर उस राजनीतिक—आर्थिक भावार-भूत सिद्धांत को इस चीनी हमस ने समस्त साबित कर दिया है। चीन की आबादी का कुछ अंश चाहे दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में फैला था

हो, उसकी अधिकतर आबादी चीन की सीमाओं में ही आज भी बसी है, और उन सीमाओं की परिधि इतनी बड़ी है कि उसकी आज की दुगुनी आबादी भी उन सीमाओं में समा सकती है। इससे यह बैसे भी समझ जा सकता है कि उसका यह प्रसारात्मक आक्रमण आवश्यकतावश नहीं साम्राज्यवादी निम्प्सा के कारण हुआ है। इसका एक खास राज भी है जो इस प्रकार है।

जापान ने आवश्यकतावश फिर साम्राज्य के ऐश्वर्य के लिए, उन्नीसवीं सदी के अंत में अपना शक्ति-संगठन शुरू किया। अपनी सबियों पुरानी सामन्ती स्थिति को सर्वथा तोड़ उसने एक आधुनिक-सामाजिक राजसत्ताक नई स्थिति कायम की और बसमान् सदी के आरंभ में उसका रूप बहुत कुछ हमसँव और प्रगाँव जसा हो गया। उसने निश्चय किया कि पूर्वी और दक्षिण-पूर्वी एशिया पर उसका एक मात्र प्रभुत्व होगा और उस दिशा में उसने उत्काल डग भरे। उसके प्रति उन्नीसवीं सदी के दो पड़ोसी हो सकते थे चीन और रूस, जिनमें चीन तो तब अफीम की नींद सोता था और रूस आर-साही का शिकार अपने साम्राज्य को डीसी घुसें संभाल सकने में असमर्थ था। सो एक ओर तो जापान ने पूर्वी सागर पर अधिकार कर चीन में यूरोपीय सत्ताओं की शक्ति क्षीण कर दी दूसरी ओर सन् १९०५ में रूस को घुल-जटा उससे मंचूरिया चीन संसार को अपनी उठती हुई अव्यय शक्ति से अर्पित कर दिया। दूसरे महायुद्ध की भूमिका-स्वरूप जब इटली ने अबीसीनिया पर हमला किया तब जापान ने भी चीन को

सीधा डकार लिया, यद्यपि यह सबमुच समभव न था कि सदा के लिए सांघ का वच्चा अजगर को निगस जाए। जीनीवा के सीग आफ नैगस न इटली और जापान दोनों को बेतावनी मेजी और दोनों न उसका उपहास कर सीग आफ नैगस की बुनियाद मिटा दी। जापान ठीक उसी तरह पूरब के राष्ट्रों के विरुद्ध बढ़ा जिस तरह हिटलर का अमनी यूरोपीय राष्ट्रों के विरुद्ध बढ़ा था। चीन के बाद फ्रिसिपीन हिन्देशिया, मलय कंबोडिया, सापोस और वियतनाम, थाईलैंड, बर्मा सभी एक के बाद एक उसकी प्रसरनीति में समाते गए और अब बारी भारत की थी जिसके कमबत्ते पर उसने हुस्की गोसावारी की और मद्रास के बन्दरगाह पर आवा किया। दक्षिण-पूर्वी एशिया ५ मार राष्ट्र अब जापान के थे और जापान का साम्राज्य उनके ऊपर ध्याया हुआ था कि ठीक तभी पश्चिम में युद्ध का पासा पलटा और स्तालिनवाद का मोर्चा रुमानिया, चेकोस्लोवाकिया होता बर्लिन तक आ पहुचा और अमनी उग्रह गया। उसका प्रसर अमनी के मित्र जापान पर होना अनिवाय था और उसकी सौटती सेनाओं के बावजूद अमेरिका ने हिरोशिमा और नागासाकी को अणुबम के पहले प्रहार में नष्ट कर जापान का न केवल बेवस कर दिया बल्कि अपनी सनाए तक जापान की अमीन पर एक समूचे युगपयन्त्र अमारती।

असे पश्चिम के राष्ट्रों ने टूटे अमनी के अगुल स बठ मई सांस सी बसे हो पूव के देशों ने भी जापानी शिकजे से मुक्त हो मवजीवन पाया। नए चीन ने चीनी हार, बुचदिसी और

कायरता के जनक कोमिन्तांगको भ्रमरीकी विरोध के बावजूद देश से उखाड़ फेंका और वहां समाजवाद की सत्ता स्थापित की। दक्षिण-पूर्वी एशिया के राष्ट्रों ने स्वयं भारत ने संतोष की सांस ली और चीन में हुए नए सवेर का भ्रमना भी सूर्योदय माना।

पर हकीकत भ्रमना में कुछ और भी जिसका तय इन राष्ट्रों को भ्रह्मास तक न हुआ था। चीन जापान का साम्राज्यवाद का उत्तराधिकारी बन गया। दक्षिण-पूर्वी एशिया के छोटे-मोटे देशों को तो उसने स्नेह दया, सहायता भादि की मूठी माया से अपने भ्रमिमुख किया पर वह जानता था कि भारत से विशेषकर एशिया ही नहीं समूचे संसार में तीव्र गति से उठते हुए उसके मान के स्वर्ग में उसे कभी न कभी टकराना होगा क्योंकि बिना उससे टकराए एशिया की राजनीति की वागडोर उसके हाथ नहीं सगेगी। और वह भ्रवसर की ताक में बैठा रहा। भ्रवसर मिससे ही जब दक्षिण-पूर्वी एशिया और अफ्रीका के नए आवाद हुए देश अपने-अपने राष्ट्र के विकास में फंसे, तब चीन जो स्वयं पिछसे प्रायः पंद्रह सालों से सभी प्रकार से अपनी शक्ति बढ़ाता रहा था सहसा अपने संभावित प्रतिद्वंद्वी भारत पर आ टूटा। भारत विश्वास की नींव से रहा था, इतभ्नता की चोट से सहसा मड़सड़ा गया।

एशिया और अफ्रीका के देशों के लिए यह हमला एक चेतानी था, विशेषकर दक्षिण-पूर्वी एशिया के लिए महान् खतरा। पर इसी पड़ी भारत की राजनीति को एक नए तथ्य

का ज्ञात हुआ, एक माया का सहसा उद्घाटन हो गया—कि एशिया-अफ्रीका की मातसिक एकता-मात्र माया है और बाङ्ग की सपने एक घोसा, कि बाङ्ग की दूसरी शक्तियाँ जहाँ बिस्वास और आशा का शिकार रही हैं, उसकी सबसे बड़ी शक्ति चीन उस पक्षील की जो उस सम्मेलन को रोक रहा था, महज झूठी सपना सेता रहा है। यह इस बात से और स्पष्ट हो गया कि, यद्यपि भारतीय सरकार ने बार-बार इस बात की घोषणा की थी कि सत्तार की प्राप्ति साठ राष्ट्र शक्तियों ने जोती आक्रमण का विरोध और भारत की आत्मरक्षा का समर्थन किया है तथा कुछ और रहा है। हकीकत यह है कि उन बीस राष्ट्रों में से जिनको भारत का परम हित और समर्थन एसान किया गया है, वस्तुतः वो ही निस्सन्देह अपने प्राप स्थिति के सतरे को समझकर भारत के समर्थक हुए होय अट्टारह भारत की प्रार्थना पर। अफ्रीकी-एशियाई राष्ट्रों की सख्या राष्ट्रसंघ में समूचे सदस्य राष्ट्रों की सख्या की प्राय प्राधी है और जिन राष्ट्रों ने भारत के इस सकट में उसका समर्थन किया है उनमें दो-तिहाई संख्या उनकी है जो एशिया अफ्रीका की परिधि के बाहर के राष्ट्र हैं। इसलिए प्रमाणत भारत को अफ्रीका-एशिया के राष्ट्रों के एका को घोका समझकर उसे अविनव छोड़ देना चाहिए। वस्तुतः 'नानएलाइनमेंट' और शांति को राजनीति की घोषणा करने वाले राष्ट्र का एकस्थानीय गुटबंदी की सकीपता स्वीकार करना स्वय एक 'क्रैमेरी' है क्योंकि यह नीति एक मानसिक प्रक्रिया है जो सारे बिस्व को परिधि में ही सही होनी चाहिए, और हा सकती है,

मात्र एशिया और अफ्रीका के संदर्भ में नहीं। मुझे सुधी है कि यह धोखा धान सहसा टूट गया है। हमें धान स्वतंत्र रूप से एशिया अफ्रीका के एक-एक राष्ट्र के पास अपने प्रतिनिधि भेज कर यह समझाने की काशिष करनी पड़ रही है कि हमारे ऊपर चीन ने जो हमसा किया है वह सही है और कि वह हमसा है, सीमाप्रांत का भगड़ा नहीं। बस्तुतः इस बात का हमें बसीस देना ही हमारे पक्ष को कमजोर कर देता है कि हमारे सीमाप्रांत के इन-इन इलाकों पर चीन ने अधिकार किया है। यह एक बकीलों का है कि सुरुआत को सरोर कर ही रह गया है अथवा दो इध जिस्म के भीतर घुस गया है। हमारा कहना तो संकोद्रित और मात्र यह होना चाहिए कि शांतिप्रिय निरीह पड़ोसी के ऊपर प्रसरसिप्ता से समुक्त चीन ने हमसा किया है कि वह हमसा अनजाने मासूम राष्ट्र पर हुआ है कि यह हमसा अब केवल भारतीय सरकार की पर राष्ट्र नीति का जाती मससा नहीं रह गया है बल्कि राष्ट्र के दूर के छोरों तक को इसने झकझोर दिया है और समूचा देश—बास-बुद्ध-युवा मर-मारी—एक प्राण होकर इस हमसे का प्रतिकार कर रहा है और उसकी यह लपट हा गई है कि अब तक एक भी चीनी अनीतिक रूप से भारत की सीमा पर रह पायगा तबतक भारत अस्त्र नहीं डालेगा।

तो इस एशिया-अफ्रीका के राष्ट्रों के एका की यह माय अब हमें छोड़नी होगी और यह माद रखना होगा कि एक ऐतिहासिक कारण से—धाजादी की लड़ाई लड़ने के कारण समान भावबोध के कारण एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रों में

तथाकथित एका ही गया था। उनमें कोई आस अनिवाय स्थानाविक संघर्ष नहा था। स्थिति उन व्यक्तियों की-सी थी जो एक ही सड़क पर एक ही ओर घसकर एक ही दिशा को जा रहे हों पर ऐसा करने वाले मारे व्यक्ति एक ही विचार से प्रेरित एक ही उद्देश्य से और एक साथ घस रहे हों यह कुछ आवश्यक नहीं।

भारत की पक्षनिरपेक्ष राजनीति साधु है और पक्षनिरपेक्ष वह बनो भी रहनी चाहिए। पर इसका मतलब यह नहीं कि यह शत्रु का शत्रु और मित्र का मित्र न समझे। अफ्रीका और एशिया क आज के स्वतंत्र राष्ट्र धनक कारण से धपन अपने कारणों से पक्षनिरपेक्ष हैं। कुछ तो इस कारण कि उनको दोनों पक्षों से सहायता चाहिए, कुछ इसलिए कि वे दोनों से डरते हैं कुछ इसलिए कि दूसरे पक्षनिरपेक्षा के प्रति उनको ईर्ष्या है।

आज वामपक्ष की राजनीति के भी अनेक पापक पंडित नेहरू को ब्रिटिश सामनवेल्थ के अन्तर्गत भारत क बन रहने की नीति को सायकता का समझन भग हैं। उसका निरूपण अखरज का नाम हुआ है कि ब्रिटन इतन मूल्यवान अस्त्रास्त्र भारत को निमूल्य दे रहा है कबल इस सहज बात पर कि भारत अपने सामसमान की रक्षा कर उन्हें सौटा दे। और यह बात भी बन्धुत वह धार्मिक भावबोध है जो अत्यंत उदार व्यक्ति उपेक्षा के प्रति उपकारपता होते बरत इसलिए करता है कि वह व्यक्ति धपन को याचक की स्थिति में न पाए। फिर एक बात और। अमेरिका से हमें अस्त्रास्त्र की सहायता खने में कोई हिचक नहीं होनी चाहिए। हम अपनी योजनाओं के

विकास के लिए उससे धन या दूसरी वस्तुओं की सहायता लेते रहे हैं। आज हमारी गई विपद् के सदम में सहायता की वस्तुओं का माप रूप बदल गया है। और हम वजाय और चीजा के शस्त्रास्त्र लेने लग हैं। इस प्रकार का सहायता का प्रच्छा-पुरा हाना लेने वाले की पित्त-वृत्ति पर निर्भर करता है। यदि लेने वाला राष्ट्र लेने वाला राष्ट्र का पिछलग्गू है तब तो निश्चय शस्त्रास्त्र स्वोकार करना मात्र याचना है। एक नए प्रकार की वासता का परिचायक है। पर यदि लेने वाला राष्ट्र अपना व्यक्तित्व स्वतंत्र घटना से समुन्नत रखता है तब वह मात्र मित्रराष्ट्र की उदारता का संघयन करता है। इस बात के कहने की आवश्यकता नहीं कि भारत अमेरिका का क्या सघार की किसी शक्ति का उपासक या पिछलग्गू नहीं। साथ ही वह इस बात को भी नहीं भूल सकता कि जहाँ अफ्रीका और एशिया के पड़ोसी तथा निकट के राष्ट्र बड़ी मुश्किल से भारतीय आत्मरक्षा का समर्थन कर पाए हैं, दक्षिणी अमेरिका के दूर के देशों ने सहज नीति से उसका समर्थन किया है। और चीन की प्रवचना और आक्रमण को भिन्नकारा है। दक्षिण अमेरिका के उन राष्ट्रों से प्रतायास ही हमारा मित्रभाव रहेगा।

दक्षिण-पूर्वी एशिया के राष्ट्र इस बात को, भारत पर चीनी आक्रमण के संदर्भ में मत्ती प्रकार समझें कि चीन का एक आकाश में प्रसयंकर धूमकेतु का उदय है और यदि उन्होंने इस तथ्य को न समझें तो उनकी आत्म पर इस भुक्ती हुई प्रमयरात्रि के पार जागकर सूर्योदय देखने का भी उन्हें अवसर

४ | चीनी हमला और दक्षिण-पूर्वी एशिया

चीन का भारत पर हमला हुआ है और उस हमले की पश्चिमी सीमा के भंगड़े से कहीं परे है। यह एक देश का दूसरे देश पर उठे जीतने के लिए हमला है। हमल की यह योजना पिछले पाँच सालों से चीन बनाता रहा है और हल्की फुल्की बातों से भारत की प्रतिक्रिया का प्रदान लेता रहा है।

ऐसा नहीं कि माओ के चीन ने कमिनितांग प्रणवा बापानी शत्रुओं से नजात पाने के बाद ही, द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् १९४७ में ही, अपनी विजित सीमाओं को स्वायत्त करन की थापणा कर दी हो। भारत से नेफ्रा लेने का विचार उसका उस योजना के सुदम में घना जा अपनी स्वतंत्रता के दस बरस बाद चीन ने बनाई। १९५७ में उसने अपना पैंतरे शुरू किये और बातचीत और समझौते का धहरा भोड़ सालों यह अपनी बिट्ठियों और रडिया क प्रचार द्वारा धात्रमण की नैतिबता के लिए पृष्ठभूमि तयार करता रहा और सन् ५९ में उसने सत्रिय सनिक उद्योग धारम किये। सन् ६२ के सितंबर म ही उसके धारों क दौर शुरू हुए जिनकी परिणति प्राय डेढ़ हजार मीस सबे मोर्चे पर एक साथ धात्रमण द्वारा

अबतुवर के अंत में यकायक हुई ।

सन् ४७ से ५७ तक दस साल का यह बसांतर उम माघा क लिए आवश्यक था जो अपने चीनी प्रचार का माइन बाम्पन सिख रहा था । मारा काय उस योजना क अनुकूल था जिसकी पहली मजिस तिब्बत पर अधिकार रूय तय की गई ऐसे बड़े फायों को हाथ में लेते वक्त चीन न बराबर अबसा का साम उठाया है । यह जानता है कि अमेरिका साम्यवाद और साम्यवादी देशों का तो सदा और सर्वत्र विरोध करत ही है करेगा ही चीन का विरोध यह विनाप उस्ताह करेगा । इस लिए योजना क बिस्वप सदन का सर करने में पहल वह देस लिया करता था कि अमेरिका के हाथ खार्स सा नहीं । १९५० में चीन में तिब्बत पर आक्रमण किय जब अमेरिका क हाथ कोरिया में फंस थे । अमेरिका निस्संदे सब कोरियाई युद्ध में बुरी तरह फस गया था क्योंकि राष्ट्रसा ता बराये नाम था वस्तुत अमेरिका ही यह सड़ाई सड़ रहा था में उन दिनों अमेरिका में ही था और नगर-नगर में कोरिया सड़ाई के लिए रपकटों की मर्ती देने देखी था यही तब मि कामसनिप्यान (अनिबाय भती) तक की वही नीवत था पहुंची थी । उत्तर कोरिया की ओर से यह सड़ाई रूस की मदद में चीन न ही सड़ी और उम सड़ाई में प्रोपेगण्डा और प्रचार क उपयोग अमेरिका क विरुद्ध उसने बस ही किया जैसे वह भारत क विरुद्ध कर रहा है । कोरिया की सड़ाई हास ए खतम हो चुकी थी जब सन् ५२ में पिक्मि स था वर आयोजित दान्ति सम्मेलन में भाग लेने वाले भारतीय छिप

मण्डल (इलोगदान) के सदस्य के रूप में। और मने युद्ध में अमेरिका द्वारा किये गए तथाकथित फीट विप के प्रयोग के अवलोकन के, जिनपर सहज ही विद्वानों की आशंका थी, और जिनपर विद्वानों की आशंका थी कि यह मुश्किल ही महज इसलिए था कि अमेरिका हीरोशिमा और नागासाकी का अणुबम द्वारा विध्वंस कर चुका था जिसमें उसका विद्वानों के इस प्रकार की क्लिष्ट बातों पर विश्वास कर लेना स्वाभाविक था। आन में समझना है, वह मार्ग झूठ था और झूठ उस इसलिए कह रहा है कि मने अपने देश के ऊपर उसका आक्रमण के सिलसिले में चीन के झूठे पक्षों को भरपूर दया और सुना है।

वास्तव में अमेरिका के हाथ बंधे होने पर मुस्कों पर चीनी आक्रमण की कर रहा था, निरंतर पर चीन के आक्रमण की बात। आन ने अमेरिका को अपनी निम्न मानव संस्थाओं की कारियाई मोर्चों पर झोंककर फना रक्सा और उधर तिब्बत पर आक्रमण कर दिया। तिब्बत निस्संदेह चीन का उपराष्ट्र रहा था और भारत तथा इंग्लैंड दोनों ने उनका इस अवधि को स्वीकार कर तिब्बत का चीन का अन्तर्गत माना था। स्वतंत्र भारत के प्रधानमंत्री ने उस स्थिति के सचिपत्र पर दो बार हस्ताक्षर भी किये थे, फिर भी तिब्बत में चीन का वह प्रबल आक्रमण ही था क्योंकि आन 'सफ़ेद जातियों का अहिंसकारी' के हथकण्ड समाजता हुआ वही सेना के साथ प्रतिकूल और विराधी निरंतर में घुसा था। अमेरिका के हाथ फसे थे।

इसी बीच दो दिशाएँ और चीन को जीतने की योजना

माघो के माइन बाँफ में वन बुकी घो पर जिम साधारी के कारण चीन सम्मान न कर सका । इनमें से एक उनर द्वार पर ही हांगकांग था दूसरा थाहोही दूर पर प्राय उसी निगा में फारमूसा था जहा उसका उपाडो हुई गण्ट्याक्ति कोमिन तांग ने चांग फाई लोक को अभ्यक्षता म कारण सी था । पर इनका सेना मोहे क घन खदाना था क्याकि इनका मने के उपक्रम में तृतीय महायुद्ध का प्रारम्भ हो जाना अनिवार्य था । हांगकांग इम्बेड का है और फारमूसा कोमिनतांग पर बरदहस्त रख अमेरिका का जिसके मुठपान चान और फारमूसा के बीच बराबर पेटाअ करते रहत है । घना चीन जैसे देख के लिए हांगकांग या फारमूसा ही ममसा से कुछ अन्विक भीवात नहीं रखता था । इतना ही नहीं कि उस विज्ञा म मिवा वक्त-वक्त कुछ बड़बडा देने के चीन खुप रहा बल्कि फारमूसा के छोटे मोटे आक्रमण तक उसने बर्दास्त किये ।

जब उधर कोई वस न चसा तब चींग दक्षिण की ओर मुड़ा । यह खरूर था कि सरणार्थी दसाई सामा और तिब्बत के पक्ष में कुछ राजनीतिक दर्भोंन आसोसन कर भारत के बिरुद्ध चीन को गिहायत का एक मौका दिया पर उन आन्दोलनों से भारतीय सरकार का कोई सबभ न था । इस सबभ के अभाव में चीन को भारत से भगाडने का कोई अवसर नहीं मिला फिर अमेरिका के हाथ भी खासी थे जिससे भारत पर आक्रमण तब न हो सका । भारत पर चढ़ाई भी तबतक इतनी आसान न थी जबतक बोरिया में हाने वाले सनिक तथा अस्त्रों आदि के नुकसान की पूर्ति न कर ली जाय और तिब्बत को पूणत

चीन का धम न बना मिया जाय जिससे खान सिब्बत में बैठ-
कर भारतीय सीमा पर अपना ध्यान पूणत संकेद्रित कर सके ।
इसके लिए छ मान का भवमर काफ़ी था ।

इस बीच खान न कुछ प्रत्यन्त महत्व के राजनीतिक कार्य
किये । वियतनाम और साओस ने अपने फ्रांसीसी प्रमुर्षों से
विद्रोह कर साम्यवादी अभिरुचि घोषित की थी जिससे फ्रांस
की मदद को अमरिका उधर आ फ़रा था । चीन का रुस के
साथ ठम सहाई में वियतनाम और साओस की सहायता के
लिए पड़ना पड़ा । नस चीन स्वयमेव कुछ फस होने के कारण
भारत की धार पूरा ध्यान तो न दे सका पर उस उत्तक पड़ो-
सियों से असंग करन का प्रवष उसने सोच लिया ।

हिमालयवर्ती धनक दशों से उसकी सीमा सर्गी हुई है ।
उमन सीमा व्यवस्था के बहाने अपनी कूटनीति का भरपूर
उद्योग किया । बर्मा से फिर समक सेने का विचार कर उसने
बगर किमी दिक्कत क सीमा निपटारा कर लिया । दो साल
पहन नेपाल में भी प्रजातांत्रिक विधान के विरोध में राजकीय
रुद्धिवादी प्रतिविभा हुई—जिसमें समवत अमरिका इंग्लैंड
और पाकिस्तान का भी हाथ था कम से कम उसे उनका
साधुवा तो मिया हू—उसको साम्यवादी का क्या साधारण
प्रजातांत्रिक मान्यताओं के सबवा विरोध में चीन ने न केवल
स्वीकार कर लिया बल्कि धन-जन से उसकी सहायता की घोषणा
की नेपाल क विघाताओं का बुला-बुलाकर पिकिंग में उनका
सम्मान किया और सासा से काठमांडू तक सहक बना सी
जिसके धर्म और उपभाग का घटकत सगाया जा सकता है ।

इससे दिवसी घोर काठमांडू के बीच की मड़क का प्रतिकार हो गया और भ्रगर नेपाल सचन न हुआ उसने भारत की मित्रता का रहस्य न समझा तो निदघम वह चीनी घजगर के जवड़ों म समा जायगा । भारत और नेपाल के बीच का मन मुटाव केवल भारतीय प्रजातान्त्रिक प्रतियोगिता के कारण ही नहीं चीन के उन शिवा म प्रारमाहन के कारण भी है ।

पाकिस्तान से भी चीन की सीमा सगी हुई है । कश्मीर के कारण ऐसा होना अनिवाय था । पाकिस्तान का मध्यम अन्व देशों से विशेषकर 'नाटो' और 'भीमाटो' का शक्तियता से होने के कारण चीन जानता है पाकिस्तानी सम्य-शक्ति से वगर अमेरिका और इन्टैड का महान में उतारे साहा नहीं लिया जा सकता । इससे उसने कश्मीर की घोर श्गारा कर मग्नि और सहायता के मुताब म उमे सटका रखा है । साथ ही चीन ने पाकिस्तान को उकसा भी दिया कि जब भारत पर वह घातमण करे सब पाकिस्तान पेंतरे ववस भारत पर कश्मीर आदि के अपने दाबे करे और भारत को संकट म मजबूर करके जो कुछ मिस सके उससे ले । सर, इस तरह चीन ने पाकिस्तान को भारत से अलग उसका शत्रु और अपना हिमा यती बना लिया ।

अब रह गये सिक्किम भूटान और भारत । सिक्किम और भूटान की म केवल अपनी कोई शक्ति नहीं है बल्कि उसकी बाहरी सुरक्षा की जिम्मेदारी भी भारत की है । इससे उनसे निपटना भारत से निपटना था और चीन अब भारत की घोर मुड़ा । उसने हिमालयवर्ती राष्ट्रों से इस प्रकार अलग-अलग

समझौता कर लिया था और पिछले पाँच वर्षों में अपनी शक्ति बढ़ा तथा तिब्बत में भी सत्ता तक मुकद्दिर रह चुका वह भारत की धार धनिमुख हुआ। इस बीच वह भारत का छाट-छाट सीमा नम्बर्गों में छड़-छेड़ उनके विरुद्ध रेडिया में विचारों में प्रचार भी करता रहा जिसका भारत को न पता था न धारा था यद्यपि देश की राजधानि के लिए वह धनान्य था।

भारत पर सीधा धाकधन करने के लिए चीन की अपनी नीति के अनुसार यह आवश्यक था कि अमेरिका के हाथ नहीं फँसे हों। पिछले महीनों में वह धनान्य था गया। अमेरिका ने दुर्भाग्यवश हाल के नवाचित नाम्यवार्थी राष्ट्र क्यूबा के सन्देश में कुछ तनातनी पैदा कर दी जिस तनातनी की मर्यादा को कम न क्यूबा में पहुँचकर कुछ की स्थिति तक पहुँचा दिया और महान् सामरिक विस्फोट की धाराका लज-लज हो चली। साथ सत्ता उबासासुती के मुह पर लड़ा था। चीनी धनान्य मुस्कुराया उसने लड़ाई तथा नफ़ा पर जवदा मारा।

यह विवेकपूर्ण तब हुआ जब अमेरिका के हाथ क्यूबा में घुरी तरह सब के साथ फम गये और जब हिन्दिया की भूतता ने उस धनान्य के जवदों में डाल दिया था। दूसरे बाँटन का प्रदन (जिस हिन्दिया ने उठाया था) और उससे भी बढ़कर एशियाई सब में हिन्दिया और भारत का परस्पर मनमुटाव देने कान्दार मसम न थे जिनकी वजह से हिन्दिया चीन को धार नुक़ जाया। ये धनान्य उस स्थिति की परिपति विवेकपूर्ण उस परिपति के प्रति संकेत थीं जो छिपे-छिपे

निरन्तर चीन के प्रति हिंदोशिया के आग्रह का रूप देती जा रही थी। इनसे कहीं बड़ी बात चीन और हिंदोशिया की मैत्री के सबूत में हो चुकी थी जिसका उदाहरण संसार के इतिहास में नहीं। यह यह कि हिंदोशिया के चीनियों को दो-दो देशों में नागरिक अधिकार प्राप्त थे चीन में भी हिंदोशिया में भी।

भारत जब सयभा अकाला हो गया तब चीन ने उसपर क्यूबा की कमकला के वरुह हमला किया। भारत चीन की दुरभिसंधि से अपरिचित होने के कारण पचशील की आपस लिए पड़ोसी के युद्धविरत तथा शांतिव्रती पड़ोसी पर आक्रमण का गुमान भी न कर सकने के कारण भारत पहले तो सह-सहाया और जा अपनी शक्तियों से पीछे हटते हुए आक्रमण का जवाब भी दिया तो केवल यह समझकर कि यह बस सीमा का छोटा-मोटा झगडा है जिसने तूम पकड़ लिया है और शीघ्र निपटा लिया जायगा। पर जब बीस-बीस हजार की डिबीजन की डिबीजन चीनी सेना छोपा और दूसरे हथियारों के साथ, समूची योजना के साथ कश्मीर से नफ़ा तक की प्राय दो हजार मील की सीमा पर (तिब्बत में डाई-तीम साक सेना खड़ी कर) हमला करने लगी तब भारत ने जाना कि यह सीमा का झगडा नहीं चीन की प्रसर-नीति का परिणाम है। और वह सबग होकर उठा और उसने प्रत्याक्रमण प्रारंभ किया। पर तब तक उसकी सीमा का बहुत बड़ा भारतीय भाग चीन के हाथ में आ चुका था। भारत ने देसब्यापी आपद् को घोषणा की। समूचा देश उस आपद् का सामना करने को एक प्राणी की तरह मैदान में आ खड़ा हुआ। आरा और से जवान नेका

की घोर चपत पड़े। नता न घन मांगा—बच्चों ने अपने गांसक सोस खरीब मेज दो सुहागिनों ने अपनी चूड़ियां मेहनतकों न अपनी तनस्वाहें। नता ने जवान भाग—बहनों ने अपने नाई निछावर कर दिये सुहागिनों न अपने मद माताभा न अपने मात।

धान संकट में था गया। उस भागा न थी कि भारत इनना सजग है कि अपनी आजादी का मोम वह जानें चुका-यगा और उसने फूड़ड़ घिनोत प्रचार शुरू किया—नहरे दंग की नारियों के तन से गहने छीन रहा है। नजूरों-किसानों के पेट का राटी! और जब भारतीय कम्युनिस्टों की केंद्रीय समिति ने प्रस्तावमास कर अपना निस्सीम सहयोग प्रभानमत्री को दिया तब चीन के रडिया ने भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी को प्रतिश्रियावादी और घनरीकी साम्रान्यवाद का उरखरीद गुनाम करके बिकारा। पर जब भारत के सभी राजनीतिक दलों न सामाजिक संस्थाओं न सेतक सभों न अपना सबसब राष्ट्र की सुरक्षा के लिए नेता को समर्पित कर दिया तब चीन के कासिष लग गई और उसने एक नया दस्य भलियार किया। बाईस नवम्बर को उसने एलान किया कि वह लडाई बंद कर देगा और पहली दिसम्बर को उसके सनिक साठ नवम्बर मन् १९५६ की चीनी अधिकार-रखा क पीछे खिने जाएंगे। आज वे उस दिना में हट जाने के प्रचात्समक उपक्रम भी कर रहे हैं पर हमें यक्षुवी मानुम है कि प्रसर-सिप्या घाडे से नहीं शात होता। वह ऐसी भाग है जिसमें जितनी भी जमीन शाना, ईपन का काम करेगी और प्रसर का उदर बढ़ता जायेगा।

मिया गया। मोतरो विराभा का यह आभाम फिर भी मिसे
 वगर न रहा कि ममले बई तरह के हैं—पूर्वी राष्ट्रों के अपने,
 पश्चिमी एशियाई घरवा के अपने घरवाँ और तुकों के अपने
 पाकिस्तान और ईरान के अपने। फिर भी पंडित नेहरू के
 दिए पञ्चमीम के मत्र को रोड़ बनाकर सब प्रतिनिधियों ने
 दापय सी यद्यपि जमा उसके आक्रमण से प्रकट है—धोन की
 दापय सर्वथा झूठी थी। आज व्यक्त हो गया है कि पञ्चमीम
 इनता नीति नहीं जितना नैतिक प्रावध है जिसे जो राष्ट्र चाहे
 करते चाहे न करते।

बांडुग की तत्कालित एशियाई एकता का राज दो साल
 हुए वसप्रेड में सुसा। यूगोस्लाविया ने एशिया-अफ्रीका में एक
 नई पक्ष-निरपेक्ष नीति का अवमदन किया था और मिस्र तथा
 भारत से विशेष भाईचारा का व्यवहार निभाया था। पर मेल
 प्रेड में जो एशियाई-अफ्रीकी और पूर्व-यूरोपीय राष्ट्रों का
 सम्मेलन हुआ वो बह बजाम समान भूमि के बजाय सतही भूमि
 के विरोधी दृष्टियों का प्रस्ताव सावित हुआ और विरोधों को
 समाप्त-समाप्त जो वहाँ की कार्यवाही की रिपोर्ट छपने में
 देर लगी वो संसार पर यह भेद सुनते बरा देर भी न लगी
 कि राष्ट्रों में एकता कितनी है विरोध कितना है। उधका
 स्पष्ट परिणाम और महत्व का परिणाम यह हुआ है कि आज
 दूसरे बांडुग सम्मेलन का कुछ राष्ट्रों को छोड़ प्रायः सर्वत्र
 विरोध हुआ है। भारत को किसी स्थिति में उसके समावित
 अभिवेशन में भाग लेने को तैयार नहीं। और यह प्रस्ताव भी
 सबसे अधिक उस हिंदीय का है जिसके पास न तो अपना

कोई पौरुष है और न अपनी कोई नीति। सगता है, उनका बस एक ही ध्येय लक्ष्य है—चीन के मनोभावों को कायरपन में परिणत करने का सामन बनना। स्थिति यह है कि यदि चीन का दबदबा उसके भारतीय धाकड़ों के बावजूद बड़ा, और उसके साम्राज्यवादी टखने सोझ नहीं दिये गए, तो सबसे बड़ा महान स्वयं हिंदीयों का होगा और चीनी 'सूडे-टनसी' का 'मास्टिया' बही बनेगा क्योंकि वही समूचे एशिया में एक राष्ट्र है जहाँ चीनियों को स्वदेश चीन के प्रतिरिक्त स्वयं हिंदीयों में भी नागरिक हक हासिल हैं। चीनी धाकड़ों के संदर्भ में जब-जब चीन की उन राष्ट्रों में प्रसर की नीति लागू होगी तब-तब उनमें रहने वाले चीनियों की स्थिति धाकड़ों के 'वर्ग की नोक' (स्पियर हड) की हो जायेगी और तब धाकड़ों राष्ट्र की कमजोरी उसी मात्रा में प्रकट और सिद्ध होगी जिस संख्या में चीनियों का वहाँ निवास होगा। और इस प्रकार के प्रवासों चीनियों की संख्या दक्षिण-पूर्व एशिया के राष्ट्रों में विलुप्त है, यह लिखने की आवश्यकता नहीं। बस इतना ही कह देना पर्याप्त है कि धाकड़ों के उस काम इन प्रवासियों को उस महती संख्या के कारण धाकड़ों राष्ट्र भयानक संकट में पड़ जावेगा।

भारत के प्रधानमन्त्री पंडित नेहरू के चीनी धाकड़ों होने के बाद संसार के राष्ट्रपतियों से जा पत्र लिखकर इस अंतर्राष्ट्रीय नीतिक घनाभार के विरुद्ध अपील की है, उसके उत्तर में एशिया और अफ्रीका के राष्ट्रों ने कुछ तेक जवाब दिये हैं। अभी तक भारत पिछले पंद्रह सालों से दूसरों को जवाब

बता रहा है अथ 'जब स्वयं समाह सुनने का अवसर प्राया है। और मलाहै ऐसा भाई है जिनसे भारत को चोट लगी है, झुम्झाहट हुई है। पर तोसी प्रतिक्रिया के बावजूद सलाहें तो हमें बर्बाद करनी ही होंगी। अभीमत है कि ये सलाहें आचरण के लिए नहीं मात्र 'ने के लिए दी गई हैं। अधिकतर ये 'पोलिटिक्स वामपन्सेस क्रिय' या एरेंट नान्सेन्स' हैं जिन्होंने और कुछ हो या न हो कुछ बातें निश्चय ही व्यक्त कर दी है। यहाँ उन समाहों का विधिवत् उल्लेख अथवा उनपर टिप्पणी अपेक्षित नहीं मात्र उनके पीछे की मनोवृत्ति पर यहाँ प्रकाश डालना अभीष्ट है।

पहली और सामान्य साधारण समाह तो यह रही है कि 'भारत और चीन मिस-बैठकर शान्तिपूर्ण साधनों से अथवा सीमावर्ती झगड़ निपटा लें तो हमें प्रसन्नता होगी। इसका अर्थ पहले तो बस इतना है कि आप मात्र औपचारिक वक्तव्य कर रहे हैं और ऐसा कदम इसलिए कर रहे हैं कि या तो आप स्थिति में विश्वास नहीं रखते या अधिक सम्बन्ध आप इस आक्रमण के घटने से दूर हैं यह बात अलग है, (जो संभवतः हमारे रेडियो आदि द्वारा लक्ष्योद्घाटन की कमजोरी के कारण है) कि आप पहले यह समझें कि यह सीमावर्ती झगड़ा नहीं प्रसर-नीति द्वारा समोचित आक्रमण है और कि यह आक्रमण उन पंचशील कसत्यदृष्टा शान्तिप्रिय पड़ोसी भारत पर कृतघ्नतापूर्वक हुआ है जिसके सामने शासक के राष्ट्र अथवा किये उपकार का यह आक्रमण द्वारा वाङ्मय में पंचशील के अर्थ ग्रहण के बावजूद प्रत्युत्कार है।

मैं उन जापान आदि राष्ट्रों की बात नहीं कहता जिन्होंने इस घातमण को बिकारा है कबल उनकी कह रहा हूँ जिनके साथ भारत का प्रायः बोली-दामन का साथ रहा है उन मित्र (यू० ए० आर०—संयुक्त अरब प्रजासत्त), घाना आदि मित्रों की। मित्र का रस पवित्र नहुरू के नैतिक आश्रय के परिणाम में बदल गया है, यद्यपि उसने पत्र 'अस अहुराम' में अभी तक बलपूर्वक स्पष्ट बक्तव्य नहीं किया। चीन के सन्धि-मित्र इस से प्रापणीय साम के सद्म में निःस्वदेह मित्र के अस्पष्ट संदेह-प्रबण बक्तव्य का घब समझ जा सकता है। फिर भी भारत उलटकर उससे पूछ सकता है कि सन् सत्तावन में मित्र में स्वैच्छ-संबंधी एक घटना घटी थी—इंग्लैंड और इज्रायल ने उस पर संयुक्त हमला कर दिया था—उस समय भारत ने उस हमला घोषित कर राष्ट्र सभ की घोर स नील की घाटी की रसा के लिए अपनी सेना भेजी थी और दोना राष्ट्रों की सौम्य का बहु धनायास विकार हुआ था। अगर भारत तब मित्र के प्रति सामान्य राष्ट्रों की भाँति औपचारिक बक्तव्य करता घबना संदेह या द्वेषीभाव का आचरण करता तब मित्र की प्रतिक्रिया क्या होती? प्रसन्नता की बात है कि मित्र ने घब स्थिति को ठीक समझकर भारत और सत्य के धनुषूल रख लिया है।

घाना साधारणतः मित्रराष्ट्र है ब्रिटिश राष्ट्र सभ का भारत के साथ मदस्य है। उस मित्रराष्ट्र का सदस्य पाकिस्तान भी है पर निःस्वदेह वह अमित्र राष्ट्र है। पर मजे की बात है कि पाकिस्तान से भी कहीं ज्यादा बदसूरती का आचरण घाना कर

रहा है। उसके राष्ट्रपति एनक्रुमा ने भारत ने जिनका भसा-
धारण प्रातिभ्य किया था इंग्लैंड के प्रधानमंत्री मैकमिसन
को पत्र लिखा कि भारत को वे अस्त्रास्त्र न दें वरना वह
सीमावर्ती म्यबडा बिद्वयुद्ध का स्व्य धारण कर लेगा। इस
बकसभ्य में ब्रिटिश राष्ट्र संघ में भारत धीर पण्डित नहरू की
घालीनता बेसग्रह की पृष्ठभूमि इस में तदनन्तर पं० नहरू
धीर एनक्रुमा के प्रति सोवियत के प्रकट स्वागतीय भावभगत
मे विपरीत धन्तर धादि सभी का बंक सम्मिसि था। मैकमि
सन ने उस पत्र का समुचित उत्तर भी दे दिया।

एक सप्ताह यह भी बी गई है, कि इस धाक्रमण का विषे
पठ सामने रखते हुए भारत का धपने पडोसियों या दोनों
महाद्वीपों के राष्ट्रों के साथ कुछ बेहतर व्यवहार होना चाहिए।
संभवत धनेक लोगों का मत है कि संयुक्त राष्ट्र संघ मे धम्य
राष्ट्रों के प्रतिनिधियों विषेपकर अफ्रीका के नबोदित राष्ट्रों
के प्रति भारतीय प्रतिनिधियों का व्यवहार कुछ अहङ्कारपूबक
होता है। निषचय यदि ऐसा है जो भारतीय सिबिस सबिध
वग से सामान्यत धपेक्षित भी है तो इसका सबस प्रतिकार
होना चाहिए। धपनी घालीनता प्राचीन संस्कृति धीर बड़े
आईपने का वम्भ भारत को कम करना चाहिए।

भारत के दूसरे पडोसी जिनके साथ उसका कुछ मनमुटाव
या म्लडा है नागार्सेड नेपाल धीर पाकिस्तान है। नागार्सेड
धर का प्रांत है, यद्यपि उसके स्वतत्र 'सोव्रन स्टेट' होने का
नारा मया है। कुछ राष्ट्रों ने नागार्सेड को भङ्काया भी है,
धपने वेष से गुजरने की उन्हें राह ही है धीर इंग्लैंड में उनके

यद्दर ननाघों को बिठा भी रखा है ताकि प्रीजा धादि भारत
 क खिसाऊ जब मयुक्त राष्ट्र संघ में ममान उठाए तब वे
 उनका मदद करें। अगर नागाघों से भारत का व्यवहार बेहतर
 हो जाय ता, उनका कहना है उसे नागासुड की सीमा पर इतनी
 भारतीय सेना न रखनी पड़े और उसका उपयोग बहु शीनियों
 के खिसाऊ कर न। नागाघों ने बिनापकर प्रवानी कौडो ने,
 आनियों से लड़न के लिए नागाघों की उवाए धपित की है।
 पर चाहे बिजना भी धपना उयाकधित परर व्यवहार भारत
 नागाघों क प्रति मूहु करसे क्या उनपर विस्वास करना नीति-
 परक हागा ? यदि सनाई बसी ता वालाङ्ग न गिबसागर पर
 नागासेड में पहुचते धानान्ताघों को किठरी पर मगेगी ? और
 अगर उन्होंने नागासेड पहुच उस स्वतन्त्र राष्ट्र धापित कर
 लिया जो यद्दर नागाघा की मांग है ता ससाह देने वालों की
 राम में शायद भारत की धपनी ही सीमा पर धपने हो राष्ट्र
 का धङ्ग काटकर स्वतन्त्र और धनु राष्ट्र की कोल धपनी काल
 में धुमा रखनी धाहिण। और अगर ऐसा होना समब कर लिया
 जाय तो धनु जो स्वतन्त्र नागासेड को पोछे कर धाधाम की
 धतमी पाटी लांघ पूर्वी पाकिस्तान से मिध जाय ता ? फिर
 धमी अगर पाकिस्तान की दुरमिसन्धि फसे और जिस 'प्लेबि-
 मिट' को उसने कश्मीर में पुकार को है उसकी धाधाम में भी
 कह करे तब ? फिर तो नेका की मह गति (जब तक हम उसे
 हमलावरों से छीन नहीं सेठ) है ही नागासेड और पूर्वी
 पाकिस्तान के धून धन ही रहें, उधर धाधाम पर सगी उदमउर
 भी धनुघों को फल उठे। फिर नागासेड से सुधभीता धपर

गुहारों से बचना है तो उनकी माँग तो उस स्वतंत्र राष्ट्र बनाने की है। क्या संसार का कोई देश नागार्सेन की इस माँग को स्वीकार कर सकता है—रूस, चीन और अमेरिका की ता बात ही प्रसन्न है ? फिर जसा व्यवहार नागार्सेन के साथ भारत का है उससे भिन्न धर और हो बैसा सकता है ? अगर हम उस दिशा में किसी गरमी का घात सोचें भी कश्मीर के स सम्बन्ध की बात भी तो यह धरपन इस खतरे के समय कस सोच सकते हैं ?

नेपाल को हमने धिक्कड़ल माराज नही किया है और न हमारा उसके प्रति साधारण ईमानदार प्रभाव राष्ट्र से भिन्न कोई प्रतिक्रिया प्रकटा धाधरण ही हुआ है। इस सम्बन्ध में साम्यवाद की धषय सेने वाले चीन का उमकी प्रजासत्ता को मिटा देने वाली राजसत्ता के प्रति धनुषुस व्यवहार उमकी धपनी धषय के सधधा प्रतिकूल है। भारत न तो धपने निश्चित धनुषान के सम्बन्ध में भी धाज के नेपाल को निराश नही किया है और धपना नेपाल बिकास सबकी सहायता देने को तैयार है। ज़ा मारुधाय सीमा पर नेपाली प्रजातांत्रिक तत्त्व प्रजा तांत्रिक शक्ति के पुनरुद्धार का प्रयत्न कर रहे हैं उमस भारत का कोई सवध नही। फिर भी जहा तक हा सके इस सङ्कट-काल में उनका धनुषोदन निम्सदेह दोनों दशों में कटुता बठा एगा जो इस वकत भी कुछ कम नहीं है। वने नेपाल को स्वय सोचना है कि उसका सबध चीन से धधिक धवधर है या भारत में ? प्रसन्नता की बात है कि धधर बहाँ के कुछ पत्रा में इस स्थिति के धनुषुस दस लिया है।

इसी सन्दर्भ में पाकिस्तान की पटोसी प्रवृत्ति का सिंहाब-सोहन कर सेना भी कुछ धनुषित न होगा। पाकिस्तान के भारत के साथ कई प्रकार के भगड़ हैं—कश्मीर का कच्छ का नदिया व जस का दरगाधियों-सम्बन्धी धन का। कश्मीर का भगडा इनमें प्रधान है (वैय कच्छ का भी भारत से लिए कुछ नम महस्व नहीं जिम पर पाकिस्तान न सीधा आक्रमण द्वारा अधिकार कर लिया है)। 'प्लेबिसिट'-सम्बन्धी वकनव्य की एक शुक मे कश्मीर के भगड़ को तूल पकड़ा गया। वरना बात साफ़ थी। भारत की स्वतन्त्रता का पृष्ठभूमि में एक एसान हुआ था—आ देगा राजा चाहे अपनी इच्छा के अनुकूल प्रमुख तिथि के भीतर पाकिस्तान या भारत के साथ अपना राज्य लेकर सम्मिलित हो सकता है। इसके प्रमुखार कश्मीर के महाराज हरीसिंह न भारत को कश्मीर समर्पित कर दिया। अन्य राज्यों की हो भांति कश्मीर की राज्यसत्ता भी भारत से आ मिली। वैधानिक उपचार समाप्त हो गया।

खर पर बात समाप्त नहीं हुई और संयुक्त राष्ट्र संघ के तत्वावधान में कितनी ही बातें हुईं जिनमें से कुछ एक को कुछ दूसरे को पसन्द नहीं आई और भगड़े की स्थिति, कश्मीर अनता तथा उसकी विषयम समा के निर्वाचन प्राधि द्वारा अभिव्यक्त मत के वापसून आज भी बनी है। पाकिस्तान में चीन के साथ भारत के खिलाफ़ छिपे-छिपे कुछ प्यार का हथ हार किया है। हम यह यहाँ नहीं बताना चाहते कि पाकिस्तान का यह आचरण नेपाल के पान के प्रति आचरण से कितना भिन्न है पर इतना जरूर कहेंगे कि भारत का खर करने का

मौका पाकिस्तान में प्रच्छा सोचा है। पाकिस्तान चीनी हमले और उसके नतीजे को तो नित्य अपने प्रखारों रेडियो भाषणों आदि से जाहिरा (परदे के पीछे जो हा रहा है वह प्रसंग है) सराह ही रहा है जब उसने वह रुझ भी यद्वर अपना लिया है जो काइयां राष्ट्र शत्रु की बेबसी में लिया करता है। उसने स्पष्ट घोषणा की है कि हम भारत में इसी संकट कास में अपनी भाग पूरी करनी होगी।

भारत को पाकिस्तान से बात करने में कोई आपत्ति अभी नहीं रही है और जब ब्रिटिश कामनवेल्थ के संक्रुती समझौते का बीज बो गए हैं तो कुछ प्रभव नहीं जा समझौता हो भी जाय। पर निस्मन्दह पाकिस्तान की नियत बुदिन में पड़ शत्रु के प्रति ओछी नियत है जो यह खर है कि राजनीति में नतिक आचरण की अपेक्षा पाकिस्तान से कोई नहीं करता। समझौता यदि मान और ईमान का हा तो भारत निश्चय करेगा पर पाकिस्तान आदि के इस भारतीय संकट से नाम उठाने के प्रयत्न का उत्तर एकमात्र भारत को अपने सक्तिमान सिद्ध करने से ही दिया जा सकेगा। यदि भारत न जसा वह कर रहा है, अपनी जनता की शक्ति का उपयोग कर चीन के प्रति दृढ़ता दिखाई और उसके आक्रमण को भ्यर्ष कर अपनी भूमि फिर से जीत ले तो पाकिस्तान की तरह व देशों को कमीन प्रबसरघादी नाम की प्रवृत्ति का भी वह सफसतापूर्वक प्रतिवाद कर सकेगा।

चीन का सतही मार्क्सवाद और राजनीतिक आत्मघात

चीन ने जो दम और अहंकार का रवया अखियायार किया है वह स्वयं उस ही से डूबेगा। अहंकार अपनी ही स्थिति को अहम् समझता है दूसरों का अपमान ही उसके अहम् की साधना में इष्ट हो जाता है और अन्ततः शत्रुओं की अमित सख्या का सृजन का अहंकारी अपनी ही निर्मित प्रतिक्रिया से मष्ट हो जाता है। चीन के अहंकार का अजगर निस्संदेह उस सीम जाएगा।

भारत की सीमा की कुछ जमीन जा उसन घोखे और हमारी सुस्ती से से सी है उससे उसक दर्प और अहंकार को आहार मिला है। उसने हमारे अनजान को आक्रमण कर हमारी पूर्वी सीमा के कुछ भागों पर अधिकार कर लिया है, उससे उस विजयी होन का आभास हो गया है और वह समझने लगा है कि उसे, जिस दार्त पर वह चाहे सुसह करने का हक है।

अपने सभी प्रकार के गन्द-मूहक-मूठे प्रचार से युद्ध क पहने और उसके दौरान में, ससार के सामन भारत पर आक्रमण का आरोप लगाकर वह अपने आक्रमण की नैतिकता सिद्ध

करने का प्रयत्न करता रहा है। फिर कुछ सफलता प्राप्त कर उदार विजयी के आडम्बर से अपनी मनमानी एकतर्फी शर्तें हवा में उड़ाने उछासी हैं, इस प्रकार-प्रभाव के साथ कि भारत इतना कमजोर है कि चीन जिस मात्रा तक चाहे उसे जीतकर यथेच्छ आचरण कर सकता है और भारत के पास सिवा दूसरों के सामने गिड़गिड़ाकर मदद मांगने के कोई धारा नहीं है।

इसमें संदेह नहीं कि शांति की शपथ देने वाले विस्तार विरोधी नीति के शत्रु राष्ट्र को अशांति और आक्रमण-काल में अस्वास्थ्य की शपथ से याचना करनी होगी और ऐसा करना सर्वथा नैतिक भी है। यह उस मात्स्यम्याय का निराकरण है जिसमें जिसकी भाठी उसकी भस' हुआ करती है जिसका परिणय चीन आज दे भी रहा है। यह सही है कि इस प्रकार जब तक निरस्त्र और शांतिवादी राष्ट्र अपने पक्ष में स्थिति समझने और समाबलिष्ठ सत्तार को अपनी ओर आकृष्ट करने के उपक्रम करता है तब तक आशान्ता अपनी समद्विष्ट शक्ति द्वारा उसकी काफ़ी हानि कर चुकता है पर आंधी की शक्ति और गति चाहे जितनी प्रबल चाहे जितनी तीव्र हो, वह बहकरही रहेगी टिक नहीं सकती जिससे आक्रमण के दीर्घकालिक छोटे ही ओ अनिवार्य हैं, राष्ट्रों की शक्ति नैतिकता के प्रति एकाग्र होकर रहेगी और आशान्ता को अन्ततः मुह की खानी पड़ेगी।

इस सर्ग में हम जरा इस युद्ध के साक्षि सत्य को समझें—चीन ने भारत पर आक्रमण किया है। यह कहता है

उसका यह धाक्रमण नहीं भारतीय विस्तारवादी नीति से संचालित उस सरकार के धाक्रमण के प्रति उसका यह धात्म रक्षा में प्रत्याक्रमण है । उसकी इस नीति की जानकारों के सामम कप्रियत देने की भी धावश्यकता नहीं क्योंकि इस प्रसङ्ग का सत्य उनसे छिपा नहीं है । इस प्रसङ्ग की वास्तविकता स इरक ही चीन ने एक ऐसी नीति का प्रवसम्बन किया है जो उसक-से धाचरण की स्थिति में स्वाभाविक ही धाक्रमक राष्ट्र को करना पड़ता है—उसने अपनी प्रकृत और धापधपूर्वक गृहीत नीति को ही सबधा त्याग दिया है । उसन बांडुंग में पन्नीस की जो धय एशियाई राष्ट्रों के साथ धापध सी थी उस ता उसने वेधर्मों स तब ही दिना है धपन समान धर्मों राष्ट्रों को भी धपनी नई दृ-धोल नीति द्वारा चुनौती दी है ।

मार्क्सवादी राष्ट्रों ने कालान्तर में धपनी बह पुरानी नीति कि जो राष्ट्र मार्क्सवादी नहीं जो हमार साथ नहीं, वे हमारे धनु हैं छोडकर साम्यवादी तथा पूंजीवादी राष्ट्रों के साथ सहधमस्थित्व की नई नीति स्वीकार की है । चीन (और उसके पिटठू धन्वीनिया) ने उसका भी धपनी तग स्थिति में प्रतिकार किया है और बह धय यहाँ तक कहन सगा है कि सहधमस्थित्व की नीति मार्क्सवाद विरोधी है उसकी जीर्णोद्धार-कर्षी है और कि युद्ध धावश्यक तथा साधनीय है । इसे धाज ससार का कोई मार्क्सवादी राष्ट्र स्वीकार नहीं कर रहा है और सबत्र चीन की इस नीति और भारत पर उसके धाक्रमण की दबे-दबे निन्दा हो रही है ।

इस निन्दा ने अत्यन्त भी धारण कर लिया है। क्योंकि प्राग और रोम के कम्युनिस्ट कांग्रेसों ने अपने जोरदार शब्दों में इस चीनी नीति की मर्खना की है। उन्होंने चीन की इस सहप्रतिष्ठित्व विरोधी धातिविरोधी नीति को समाजवादी हितों का सहार करने वाली एनाम किया है और इतालीय कम्युनिस्ट दल के नेता तोस्त्रियाती ने तो भारत के प्रसङ्ग का खुद शब्दों में उल्लेख करने से भी परहेज नहीं किया है। रोम में हुई पिछली कांग्रेस में सहप्रतिष्ठित्व और धाति के मसले पर चीनी नीति की निन्दा में जो प्रस्ताव १०० प्रतिनिधियों ने पास किया उसका विरोध केवल दो प्रतिनिधियों ने किया जो दोनों चीनी थे। उनमें से एक के लिए भाषण में किए अत्यन्त मूठ के प्रयोग के प्रतिकार में तो तोस्त्रियाती ने कहा कि प्रिय कामरेड तुमने जो बातें कही हैं उनका अस्तित्व नहीं वे सर्वथा मिथ्या हैं और तुम्हारे मूठ के अलबत्ते का यह 'बुमरेग' मैं तुम्हें विस्वास दिसाता हूँ शीटकर तुम्हारे ऊपर ही थोट करेगा।

पश्चिम के राष्ट्रों में इटली के कम्युनिस्ट दल की उम्मा सबसे बड़ी है। सारे पाश्चात्य कम्युनिस्ट दलों ने इतालीय दल की इस चीन सम्बन्धी निन्दा का अनुमोदन किया है और उनकी चीन के सदर्म में यह प्रवृत्ति कुछ तत्काल नहीं उत्पन्न हो गई है। चीन धातिविरोधी जिस धाचरण का जिस निन्दनीय और राष्ट्रवादी मङ्गलाङ्ग नीति का कुछ काम से निरन्तर उपयोग करता रहा है वह भारत पर आक्रमण से भी पूर्व की है। मास्को की उस धाति और निरस्त्रीकरण कांग्रेस में मैं

भारतीय प्रतिनिधि की हैसियत से मौजूद था जब रूस के प्रधान मंत्री और रूसी कम्युनिस्ट दल के प्रधानमंत्री निकिता ख्रुश्चेव ने अपने भाषण में शांति के प्रयत्न में भारत और प्रधानमंत्री नेहरू का दो-दो बार उल्लेख किया और चीन या माओ का एक बार भी नहीं जिससे चीनी प्रतिनिधि माओ तुन ने मुह बिचका दिया था और रूस तथा चीन के परस्पर सम्बन्ध में तनाव कुछ और बढ़ गया था। रोम की कांग्रेस का प्रस्ताव और सार्वभारतीय की कट्टर प्रतिक्रिया वस्तुतः चीनी प्रसरणीति की विरोधी परिणति थी।

अब वास्तविक स्थिति यह है कि चीन कम्युनिस्ट राष्ट्रों की जमात में भी शामिल नहीं, विलकुल अकेला है। चीन अपने ही वंश का इस क्रूर शिकार है कि वह संसार के अन्य कम्युनिस्ट दलों को भी धिक्कारने से नहीं श्रूकता। भारतीय कम्युनिस्ट दल की केन्द्रीय समिति ने जब चीनी आक्रमण की विस्तारवादी हमला एमान कर, चीन को धिक्कारा और दल के सदस्यों को देश के सुरक्षा आंदोलन की जन घन से सहायता करने का आदेश दिया तब चीन की घोसलाहट सुनने के लायक थी। उसने भारतीय कम्युनिस्ट दल को प्रतिक्रियावादी घोषित किया और उसके विरोध में अपना ही आचरण दुष्टांत रूप में प्रस्तुत किया, कि किन्तु तरह चीन पर आक्रमणों के समय चीनी कम्युनिस्ट दल ने उनका प्रतिकार नहीं किया था। चीन ने पहले तो अपना आक्रमण सिद्धांतवादी सिद्ध करने की कोशिश की (जिसका न तो संसार के किसी कम्युनिस्ट दल को धोखा है, न जिस सहस्रस्तित्वविरोधी चीनी नीति के प्रति

आक्रोश व प्रतिरिक्त कोई मोह है) और जब वह उससे चुका तब उसने भारतीय वस्त्र को ही विकारना शुरू किया।

अकेला चीन, सर्वत्र से निष्कासित-सा भारत पर टूट रहा है। वह यह भी जानता है कि वह भारत को आत्मसात नहीं कर सकता। ऐसा कर सकता असम्भव है। साधारणतः सभार की सामाजिक-राजनीतिक स्थिति में ऐसा हाँ करना ही संभव नहीं था और अब तो माघ ही समूचा भारत उसके निःशेष राजनीतिक वस्त्र एक व्यक्ति की तरह मन प्राण से अट्टान की भाँति टकराने को सामने खड़ा है।

अभी-अभी चीन ने अपनी कमीन उदारता का आवास मुझ वस्त्र करके दिया है। पर इससे न तो उसका यही संकेत हमें गबारा है कि वह महाबली है और जब चाहेगा हमसे जो चाहेगा छीन लेगा और न यही कि अपनी सातिपक्षीय नीति के कारण ही उसने ऐसा किया है। वह यह भी जानता है कि किस हद तक रूस उसकी मदद कर सकता है। रूस की बुद्धि भारत के हित की रही है रूस का भारत को वायुयान-विश्रम पर अमल करना चीनविरोधी सत्यनिष्ठ पद्धति का परिचायक है, जिससे, और कारणों के प्रतिरिक्त चीन का रूस के प्रति असहभाव बढ़ेगा। सही कि रूस और चीन संघि द्वारा संयुक्त हैं और रूस चीन की सहायता करने को सन्नद्ध है, रूस वस्तुतः उन सारे साम्यवादी राष्ट्रों पर हुए आक्रमण के प्रतिकार में उनकी सहायता करेगा पर उनके आक्रमण में सहायक होकर नहीं था उन पर हुए आक्रमण के प्रतिकार में। क्यूबा का असङ्ग प्रत्यक्ष है जिससे अमरीकी समाहित आक्रमण का संकट

टसते ही उस न अपना हाथ खींच लिया है और जिस प्रसङ्ग में चीन न उसे घसयत मात्रा में गालियाँ दी हैं जिस ख्यी घाघरण को संसार के अन्य राष्ट्रों और स्वयं अमेरिका के साथ समस्त साम्यवादी राष्ट्रों ने भी साधुवाद दिया है। इससे जाहिर है कि भारत का प्रसङ्ग न कोरिया का, न क्यूबा का ज्ञान सेवस्कि युद्ध चीन क भाक्रमण का ज्ञान से इस युद्ध में खुश चीन की मदद से निश्चय ही हाथ खींच लेगा। वस्तुतः उसने खींच ही लिया है बिनापकर इसलिए कि वह भरपूर जानता है कि इस युद्ध से चीन क ऊपर किसी तरह का खतरा न तो गुडर रहा है, न गुडरने की समावना है। उसे निश्चय ही यह किसी हालत में गवारा न हागा कि मित्र राष्ट्र को घकारण और विद्रोह विराधी परिस्थिति में चीन के मान घहकारपूर्ण विस्तारवादी नीति के प्रसार में वह सहायक हाकर नाराज करे, न उसकी नीतिकता ही इस प्रकार उस भारतीय राष्ट्र को नष्ट करन में सहायक होयीं जो घनक घगी में समुक्त राष्ट्र सघ के 'प्रारम्भ' पर उसका सवधा सहायक रहा है।

चीन परिणामतः दोनों ओर से मारा जाएगा। राष्ट्र सघ में ता उस अपह नहों ही है साम्यवादी राष्ट्रा से भी यह प्राय बहिष्कृत है। यह अकेली स्थिति तभी गवारा हो सकती थी जब खुश की तरह वह पबित्रमान संगठित तथा विकसित ज्ञान और घपन उपग्रहों से सहायता—खनिज आदि वस्तुघों की—उस सहज प्राप्य होनी। पर मित्र राष्ट्रों से उसके सम्बन्ध का एमान तो तो गिमाती न कर ही दिया है, घपना घानरिक विकास भी उसन कितना किया है यह जानकारों के

लिए धनवाना नहीं है। सम्भवतः संसार के किसी देश को विकास की दिशा में इतना नहीं करना है जितना चीन को अपने भौगोलिक विस्तार के संदर्भ में, करना है। उसकी यह प्रसरणोक्ति विशेषकर भारत के मूल्य पर उस मित्र राष्ट्र और पड़ोसी पर आक्रमण कर, अपनी ही जानमेवा सिद्ध होगी।

घोरों से ज्यादा स्वयं चीन को जान सेना चाहिए कि साधारणतः असाधारण उदासीन भारत को भी चुपचाप हड़प जाने की शक्ति किसी र्व नहीं है। और आगरुक अपनी रक्षा में सन्नद्ध को कोई, विशेषकर अपने घर के भीतर सबका अपाहिज और अपनी गाय सीधी जनता को युद्ध के मोर्चों पर क्रूरतापूर्वक हांक स जाने वाला चीन तो किसी हासत में उससे छीन न सकेगा। हां चीन स्वयं अपनी ही शक्ति क्षीण कर, नष्ट निश्चय हो जाएगा। धकेला हो जाने से, उसे अन्य राष्ट्रों से युद्धावस्यक उपकरण न मिसने से, घर के भीतर अपनी ही स्थिति कठिन होने से उसे अपने ही प्राणों का भवसव होगा। पर इस स्थिति में अपने प्राण ही कब तक कायम रह सकते हैं? अपना आक्रमण चीन का आत्मघात सिद्ध होगा।

७ | चीनी आक्रमण और साहित्यकार

सन् १२५० की बात है फरवरी महीने की जब दिव-
गत डा० फ्राइन्स्टाइन ने प्रिन्स्टन के फ्रूडहॉल के अपने कमरे
में मेरे इस प्रश्न के उत्तर में कि यदि एक राष्ट्र प्रसर-नीति से
प्रेरित होकर अन्य राष्ट्र पर आक्रमण करे और उस आक्र-
मण में सहायता के लिए देश के वैज्ञानिकों से सहायता का
आग्रह करे तो क्या वैज्ञानिकों का सहायता देने से इन्कार कर
देना उचित और नैतिक होगा। उन्होंने कहा था 'निर्दोष ! ही'
उनका विश्वास था कि वैज्ञानिकों का वह आचरण न केवल
देशद्रोही होगा बल्कि सबया मानवीय और नैतिक होगा।

पाँचवीं सदी ईसा पूर्व जब एथेन्स के प्रसिद्ध जनरल
आल्किवियदीस ने सिसिली पर आक्रमण किया तब एक ग्रीक
नाट्यकार ने नाटक लिखकर उस आक्रमण का विरोध किया,
उसे अनैतिक कहा और उस आक्रमण की पराजय में आक्रमण
को हास्यास्पद भी बना दिया।

इनके प्रतिरिक्त भी साहित्य के इतिहास में अनेक ऐसे
उदाहरण मिल जाएंगे जहाँ साहित्यकार ने अपनी आवाज
आक्रमण के विरोध में उठाई है। पता नहीं किसी चीनी

होना चाहिये ।

पर यह तो हुई आक्रमण के सद्वर्तन साहित्यकार की नैतिक प्रतिक्रिया की बात । अब हम उनिक इस बात पर विचार करें कि भारतीय साहित्यकार को इस संकट में चीनी आक्रमण के संकट कास में करना क्या चाहिये । भारतीय साहित्यकारों के एक वर्ग की—प्रगतिशील लेखक-वर्ग की—बात से यह मामूला धीरे धीरे रहा है कि साहित्य सर्वथा राजनीति-निरपेक्ष नहीं हो सकता कि उसका संकट साक्षात् व्यवसाय परोक्ष रूप से जीवन से घना होने के कारण उसमें होनेवाले राजनीतिक परिवर्तनों के अनुकूल ही साहित्यकार की प्रवृत्ति भी परिवर्तित होती जाएगी और कि जो साहित्यकार जितना ही अधिक जीवन और समाज के प्रति अनुरक्त होगा—भूकि राजनीति जीवन को सदा सर्वत्र उद्देशित करती, उसे परिषिद्ध करती रहती है—राजनीतिक उभयपुत्र से उठना ही घना उसके कृतित्व का संबंध होगा । आज का संकट वस्तुतः जीवन पर आघात का संकट है—‘शरीरमासं ससु धर्मसाधनम्’ शरीर जीवन का पर्याय सारे धर्मों की साधना का मूल है—जिसके प्रतिकार की भावना अगर साहित्यकार के मानस में प्रबल न हुई, उसके कृतित्व में लेखनी के माध्यम से न उठरी तो निश्चय ही उस जीवन की प्रसाधरण क्षति हो जायेगी जो स्वयं उसके अस्तित्व का कारण है । सन्तोष की बात है कि इस विधा में न केवल बहु प्रगतिशील वर्ग बल्कि समूचा भारतीय लेखक समुदाय समाममानस, एकाचिती हो उठा है और देश के सारे राज्यों से देश की

जनता के प्रति त्याग और विसर्जन के लिए, प्राणोत्सर्ग तक के लिए उसने आवाज उठाई है। प्रकट है कि इस संकट के प्रतिकार का प्रयत्न हा रहा है।

देश के संकट काल में दानु के प्रतिक्रिया और इस प्रतिक्रिया के परिणाम में साहित्यिक उपक्रम स्वाभाविक होना चाहिये और स्वाभाविक होता भी है। पर कुछ ऐसे भी लोग समभव है देश म हों धायब हैं जो जा संकटकाल तक की इस दृष्टि को 'रेजिमेन्टेशन' कहकर वयक्तिक स्वाधीनता की दुहाई दते हैं। पर मैं समझता हू, यह बाहर से 'रेजिमेन्टेशन' नहीं भीतर मे साहित्यकार की उस रुचि का प्रमाण उपस्थित करता है जो सामाजिक प्रक्रिया से विरक्त है। जिसमें समाज के प्रति जितनी ही अनुरक्ति होगी, जितनी ही सामाजिक दुःख-सुख के प्रति उसकी एकरसता होगी, उतनी ही संकटों स उसकी रक्षा क लिए, उसके दुःख-सुख से गहरी सहानुभूति के कारण, उसमें प्रतिक्रिया भी प्रबल होगी। वयक्तिक सदन र्म भी इस यह समझकर स्वीकार करना चाहिय कि समाज की रक्षा ही ब्यक्ति की रक्षा है, यह रक्षा दोनों के जीवन की है। यदि कोई साहित्यकार सोच कि एक विशेष विद्या में उसके भाषा का संप्रमण उससे मिल्न (राष्ट्रीय) आह्व सत्ता के निर्वेदा से हो रहा है जसा कि उसकी दृष्टि में होना नहीं चाहिये, तो उसका उत्तर माध यह है—चूकि उसकी दृष्टि समाज के संकट को समझ उसकी रक्षा के अनुक्रम उपक्रम नहीं करती निश्चय समाज के विनाश की सम्भावना, स्वयं उसके निवास को भी समभव करती है, उन्हीं कारणों

से जो उसके नागरिक होने के माते उसके दहिक अस्तित्व को कायम रखने में सहायक होते हैं अब उसकी समाज के प्रति उदासीन दृष्टि के फलस्वरूप उस दिशा में साहित्य-निर्माण के लिए उसे प्रेरित कर रही है। यह निस्सन्देह सत्य है कि पर-प्रेरित और आत्म प्रेरित साहित्य में अन्तर होगा। पर क्या उस आत्मबोध का ही निर्माण साहित्यकार के मानस में नहीं किया जा सकता जिससे यह आत्म को परात्म से अभिन्न कर एकांगी हीनयान की प्रवृत्ति छोड़ वह बगी-सर्वांगी महायान के प्रति प्रवृत्त हो? व्यक्ति का संघर्ष व्यक्तिगत हो सकता है, वह संघर्ष परस्पर रागद्वेष का जनक भी हो सकता है पर समाज के प्रति आचरण से साहित्यकार का व्यक्तिव्यञ्जक न होकर यदि समाजव्यञ्जक हो तभी वह दानों के लिए कल्याणकर हो सकता है—समाज के लिए भी समाज के अभिन्न व्यक्ति के लिए भी।

और जो आत्म प्रेरण की प्रतीक्षा में राष्ट्र और समाज के संकटकाल में भी चुप बैठा रहेगा वह निश्चय अपनी वैयक्तिक चेतना का—जिसे वह अज्ञान के कारण व्यक्ति की स्वतंत्रता मानता है—प्रसारक नहीं पासक होगा और कबस यह प्रकट करेगा कि उसके भीतर छपने से भिन्न और परे

स चीनी आक्रमण के सम्बन्ध में जो लिखा गया है—घोर सत्ता काफ़ी गया है गो इतना काफ़ी नहीं जितना चाहिए—उसमें अनेक कृतियाँ नगण्य नहीं कहला सकतीं। वस्तुतः यदि संकट की भावना से प्रेरित साहित्यकार इस प्रकार का साहित्य निर्मित नहीं कर पाता जिस उष्णस्तरीय कहा जा सके तो निश्चय आवश्यक परिमाण की सामाजिक निष्ठा, एकाग्रता और एकानुभूति की स्वल्पता ही उसका कारण होगी। साहित्यकार को राष्ट्रनिष्ठ, समाजनिष्ठ प्रवृत्ति से अपने मानस को भरना होगा तभी राष्ट्र और समाज पर की हुई घाट घबवा डाले हुए संकट को वह अपने ऊपर पड़ी चोट या संकट समझेगा और तभी अपनी अनुभूति और भाव से प्रेरित हो वह अपनी नई समाजप्रवण आत्म रति में साहित्यिक कामकी बसामिकी का—इस सीमित संदर्भ में भी—निर्माण कर सकेगा।

फिर यदि संकट के संदर्भ में लिखा साहित्य कामकी नहीं भी बन पाया संकट में पड़े जीवन की रक्षा में अस्थायी साधनों से भी सहायक हो सका, तो क्या यह स्थायी साहित्य की उत्प्रेरक शक्ति की रक्षा नहीं हुई? और क्या यह प्रक्रिया कुछ कम महत्त्व की होगी? राष्ट्र और समाज की रक्षा के प्रति जो जागरूक हाना है वह उस दिशा में उपक्रम करता है जिसमें स्थायित्व के मूलाधार स्थित हैं और यदि अस्थायी साहित्य द्वारा ही हम इस संकटकाल में संकट के प्रति अपनी सारी शक्तियाँ साहित्य की पुकार द्वारा एकत्र एवं संगठित कर सकें तो क्या इतना ही पर्याप्त नहीं है? क्या इसके द्वारा,

अस्थायी साहित्य के द्वारा ही युद्ध को हटा शान्ति भी स्थापना यदि हम कर सकें तो क्या हम उस परिस्थिति का निर्माण न कर सकेंगे जिसमें युद्ध सज्ज दिया जाता है शान्ति की प्रतिष्ठा होती है स्वयं स्थायी साहित्य पसन्दा है ?

घोर साहित्यकार का इस संकट का विरोध एकाकी नहीं सामुदायिक और उससे भी बड़कर सामाजिक होगा। दक्ष के विविध साहित्य-वर्गों साहित्य-वृष्टियों, लेखक-संगठनों को एकत्र हो सबका समानधर्म होना होगा क्योंकि देश के इस समान संकट को सभी समान रूप से स्वीकार करते हैं। इस प्रसंग में कमसे कम जब तक यह समान संकट बना है, इसकी धनिधार्य आवश्यकता है कि हम अपने स्थानीय विरोधों को हटा दें और एकमात्र इस संकट के विरुद्ध प्रतिक्रिया को समाज-प्रेरण के रूप में जगा रखें। हमारे परस्पर के सैद्धान्तिक विरोध हमारी क्षमता को क्षीण करेंगे।

बस्तुतः आवश्यकता इस बात की है कि न केवल इसी देश में बल्कि इससे भिन्न संसार के अन्य सारे देशों में भी हम अपनी धारणा उठाकर अपनी धारणा की अनतिक्रमता के प्रति साहित्यकारों का संगठन करें। उचित तो यह है कि भारतीय लेखक किसी केन्द्रीय स्थान में एकत्र होकर अपनी धारणा के प्रतिरोध में शान्तिप्रवण घोषणा करें और युद्धविरोधी यह घोषणा न केवल अफ्रीका और एशिया के साहित्यकारों के प्रति ही बल्कि संसार के प्रत्येक देश के लेखक-वर्ग के प्रति—स्वयं अपनी लेखकों के प्रति भी—और यह अपना धारणा घोषणा अन्तर्जातीय स्वरूप धारण करे। जिस प्रकार

राजनीतिक सिष्टमण्डलों द्वारा विदेशों में इस आक्रमण की अनतिक्रता की घोषणा होनी आवश्यक है उसी प्रकार लेखकों से सम्बन्ध स्थापित कर शान्तिप्रिय देशों के ऊपर निरक्रुश आक्रमण की निंदा होनी चाहिए । जब भारतीय लेखकों की आवाज पृथ्वी के सभी देशों में गूँजिगी तभी भारतीय लेखक-वर्ग की भाव चेतना की रक्षा होगी और शान्ति के विनाश की प्रक्रिया का प्रतिरोध हागा ।

कश्मीर तथा पाकिस्तान

८ | कश्मीर के इतिहास पर एक नज़र

कश्मीर की समस्या आज भारत और पाकिस्तान दोनों के सामन है। उसका पुराना और नये इतिहास पर एक नज़र डालना नामुनासिध न होगा। उसके प्राचीन इतिहास का पता कश्मीरी-मदित कवि कल्हण की 'राजतरंगिणी' से चलता है। 'राजतरंगिणी' के उपसंहार के रूप में जोनराज ने 'द्वितीय राजतरंगिणी' लिखी। इन दोनों इतिहासों और समकालीन कुछ मुस्लिम 'तबारीखों' के आधार पर कश्मीर का प्रायः १३३६ ई० तक का इतिहास स्पष्ट प्रप्नुत किया जा सकता है। उस साल शाह मीर नाम के एक बिजेता ने कश्मीर जीत लाम्युरोन नाम से उस देश पर अपनी हुकूमत शुरू की। तब कश्मीर छोटा था प्रायः सिन्ध और भेलम की उपरसी घाटी तक ही सीमित। आज उसकी हद्दें पंजाब से पामीर और सिन्धुन से चित्राल-थारखून तक फैली हैं।

वस तो कल्हण ने पुराणा आदि के आधार पर कश्मीर के इतिहास का ब्यौरा प्रागैतिहासिक काल से दिया है पर प्रमाणित उसका सहा इतिहास सातवीं-आठवीं सदी ईसवी से ही हमें उपलब्ध है। कश्मीर के ऐतिहासिक रगमन पर जिन

राजकुलों ने प्राचीन कास में अपना 'पाट' बसा है उनमें प्रधान 'बर्कोटक' 'उत्पल' और 'मोहर' रहे हैं। पर ऐतिहासिक रूप से भी केवल बर्कोटकों से ही उस सुन्दर भूखण्ड की कहानी नहीं शुरू होती। एक बार वह क्यातनामा प्रजाक के अधिकार में भी रह चुका था। कहते हैं ईसा से पहले तीसरी सदी में अशोक ने उस सुन्दर प्रदेश को बौद्ध धर्म को दान कर दिया था। श्रीनगर के निर्माण का श्रेय भी अशोक को ही दिया जाता है। अशोक के बाद जब उसका साम्राज्य उसके पुत्र पौर्षों में बँटा तो कश्मीर अशोक के हिस्से पड़ा। नहीं कहा जा सकता कि अशोक और उसके वारिसों के हाथ में कश्मीर कब तक रहा, पर कुछ शक नहीं कि सिन्धु और पञ्जाब पर अशोकों का शासन दूसरी-महली सदी ईसवी पूर्व में स्थापित हो जाने से कश्मीर भी वास्तवी (बन्स) के अशोक राजपराने के अधिकार में आ गया हो। फिर अशोक-पुत्रों के हाथ से कश्मीर कुषाणों ने दाखिल छोला तो निस्सन्देह कश्मीर की बाटी कपल आदि के अधिकार में आई। कनिष्क ने तो श्रीनगर के पास ही बौद्धों की प्रसिद्ध बोधी 'संगीति' का अखिलेखन किया जिसकी अखिलेखता सुपर्व ने की और जहाँ अशुमित्र अशोकबाप आदि ने अपने वार्षिक प्रवचना द्वारा बौद्ध-दर्शन का विस्तार किया। संभवतः उसी पहली सदी ईसवी के कुषाण-शासन से महायान का प्रवर्तक नागार्जुन भी सम्बन्धित था शायद चिकित्सा शास्त्र का महान पण्डित परक भी। कश्मीर का राज कुषाणवशीय कुनिष्क ने भी कुछ कास भागा। फिर एक पीढ़ी के लिए उस पर छठी सदी ईसवी में हर्षों की भी सत्ता अयो

जब मध्यदेग से मार लाकर लोरमाण कश्मीर पहुँचा और घांते से उमन वहाँ की गद्दी हूबप ली। कल्हण ने अपनी 'राज-तरंगिणी' में उसकी धमनूपिकता का विषय वर्णन किया है। उसकी क्रूरता इतिहास प्रसिद्ध है। पर्वत की खाटिर्मा से हाथिया की नीब गिराकर उनके मयान्वित पिशाचों से वह विशेष मुस पाता था। सातवीं सदी में कर्कोटक धाय। इस प्रकार कश्मीर में केवल भारत का उल्लंघन बना रहा बल्कि पटना और पंजाब के सामरिक उसका ज्ञान-कलेवर सदा संवारत रहे।

उस सदी के शुरू में गोनन्दों से कश्मीर छीनकर दुस्र-वधन ने कर्कोटक सदा की नीब डाली। वह हयवधन का समकालीन था और उसने हय को बुद्ध का दांत भेंट किया। उस कास कश्मीर के ही शासन में बैठास हजारस, पुछ और राजोरी भी थे। उस राजकुल का सबसे महान राजा समिता-हित्य मुक्तापाठ (स० ७०४-६० ई०) था। वह राजा दुस्रभक का तामरा बटा था और शक्ति से रामदण्ड उसने स्वायत्त किया था। कश्मीर के विजयी राजाओं में उसका-ना विजेता दूमरा न हुआ। वह कन्नौज के यशोवमत् और प्रसिद्ध सम्भूत कवि-नाटयकार भवभूति का समकालीन था। तब तक कश्मीर अधिकतर खान के ही अधिकार में रहा था। मुक्तापीठ ने कश्मीर का खानी हयकर्मों से मुक्त कर उसक कुछ इलाके मोट (त्रिद्वत का एक भाग) भादि भी लिये। उसने मुसलारिष्ठान दरदिम्तान और पंजाब के भाग भी जीते थे, फिर पहाड़ ही पहाड़ हाता वह गीड़ में उतर गया था जिस पर कुछ काल के लिए उसका कब्जा हो गया। ७३३ ई० में

राजकुलों ने प्राचीन काल में अपना 'पाट' खेला है उनमें प्रधान 'ककोटक' 'उत्पल' और 'सोहर' रहे हैं। पर ऐतिहासिक रूप से भी केवल ककोटकों से ही उस सुन्दर भूखण्ड की कहानी नहीं शुरू होती। एक बार बहु ख्यातनामा अशोक के अधिकार में भी रह चुका था। कहते हैं ईसा से पहले तीसरी सदी में अशोक ने उस सुन्दर प्रदेश को बौद्ध सभ को दान कर दिया था। श्रीनगर के निर्माण का श्रेय भी अशोक को ही दिया जाता है। अशोक के बाद जब उसका साम्राज्य उसके पुत्र पौत्रों में बँटा तो कश्मीर अलौक के हिस्से पड़ा। नहीं कहा जा सकता कि अशोक और उसके बारिनों के हाथ में कश्मीर कब तक रहा, पर कुछ शक नहीं कि सिन्ध और पंजाब पर ग्रीकों का शासन दूसरी-पहली सदी ईसवी पूर्व में स्थापित हो जाने से कश्मीर भी बाल्ही (बल्ह) के ग्रीक राजभरान के अधिकार में आ गया हो। फिर जब शकों-पहसबों के हाथ से किवार कुषाणों ने शक्ति छीनी तो निस्सन्देह कश्मीर की घाटी कपस आदि के अधिकार में आई। कनिष्क ने तो श्रीनगर के पास ही बौद्धों की प्रसिद्ध 'श्री संगीति' का अधिदेशन किया जिसकी अध्यक्षता सुपर्दे ने की और जहाँ वसुमित्र अश्वघोष आदि ने अपने दार्शनिक प्रवचनों द्वारा बौद्ध-दर्शन का विस्तार किया। समस्त उसी पहली सदी ईसवी के कुषाण-शासन से महायान का प्रबलक नागार्जुन भी सम्बन्धित था शायद चिकित्सा शास्त्र का महान पण्डित शरक भी। कश्मीर का राज कुषाणवंशीय हुविष्क ने भी कुछ काल भोगा। फिर एक पीढ़ी के लिए उस पर छठी सदी ईसवी में हूणों की भी सत्ता जमी

जब मध्यदेश से मार लाकर तोरमाण कश्मीर पहुँचा और
घासे से उसने वहाँ की गद्दी हूठप ली। कस्तूरण ने अपनी 'राज-
तरनिणी' में उसकी अमानुषिकता का विषय वर्णन किया है।
उसकी क्रूरता इतिहास प्रसिद्ध है। पश्त की थोटिया से हाथियों
को नीचे गिराकर उनके भयान्वित जिघाड़ों से वह विक्षेप सुन्न
पाता था। सातवीं सदी में कर्कोटक आये। इस प्रकार कश्मीर
न केवल भारत का उन्नतांश बना रहा बल्कि पटना और
पञ्जाब के दार्शनिक उसका ज्ञान-कलेवर सदा सवारते रहे।

उस सदा के शुरू में योनर्द्धों से कश्मीर छीनकर दुसम-
वर्धन ने कर्कोटक वंश को नीचे डाली। वह हर्षवर्धन का
समकासीन था और उसने हर्ष को युद्ध का दाँत भेंट किया।
उस काल कश्मीर के ही शासन में केतास, हजारा, पुछ और
राजारी भी थे। उस राजकुल का सबसे महान राजा ससिस्ता-
न्त्रिय मुक्तापीड (स० ७२४-६० ई०) था। वह राजा दुसमक
का सीसरा बेटा था और शक्ति से राजवण्ड उसने स्वायत्त
किया था। कश्मीर के बिजयी राजाओं में उसका-सा विजिता
दूसरा न हुआ। वह कन्नोज के यशोवर्धन और प्रसिद्ध संस्कृत
कवि-नाट्यकार भक्तभूषि का समकासीन था। उस तक कश्मीर
अधिकतर चीन के ही अधिकार में रहा था। मुक्तापीड ने
कश्मीर को चीनी हथकड़ों से मुक्त कर, उसक कुछ इलाके
भोट (तिब्बत का एक भाग) आदि भी सं लिये। उसने
तुलारिम्तान दरदिस्तान और पंजाब के भाग भी जीते थे
फिर पहाड़ ही पहाड़ होता वह गौड़ में चतर गया था जिस
पर कुछ कास के लिए उसका कब्जा हो गया। ७३३ ई०

यह कन्नौज पर बढ़ दीडा और यज्ञोपमन को हराकर उसने वहाँ अपने नाम के सिक्के चसाये । यह निर्माता भी बड़ा था और उसके अनेक मन्दिरों में सूर्य के प्रसिद्ध मालण्ड-मन्दिर के सहहर प्राज भी अड़े हैं ।

जयापीड विनयादिरय मुषतापीड का पोता, कर्कोटक राजकुल का दूसरा प्रसिद्ध सम्राट था । उसने कन्नौज, नेपाल और गीड़ पर फिर अधिकार कर अपने दादा की नीति दुहराई । उसके साम्राज्य और जुम्म से प्रजा तबाह हो गई । ८२० ई० में उसके मरने पर प्रजा को नजात मिली ।

उसके दाद के कर्कोटक राजा बमजोर हुए जो तमवार मखवूती से न पकड़ सके और मवीं सदी के बीच उत्पत्तों ने उनसे कश्मीर का राज छीन लिया । कुट्टमीमसू' के रचयिता वामोदरगुप्त और प्रसिद्ध धर्मकारशास्त्री उदमत और भामह जयापीड की सरक्षा में ही रहे थे ।

उत्पत्तों में पहला अवन्तिवर्मन हुआ जो ८५५ ई० में गही पर बैठा । प्रजा फर्कोटकों और सामन्ती डाकुषों से बेहाल हो रही थी । चारों ओर अराजकता फैली हुई थी । खेती बर बाद हो रही थी मन्दिरों पर डाके पड़ रहे थे । उसने डामरों को शक्ति सौड़ दी । डामर बेहाली घामस्त थे जिन्होंने भयानक सूट-भार देश में मचा रखी थी । बोनठपुर उसी अवन्तिवर्मन ने बसाया था । 'धम्म्यासोक' का प्रतिभाषामी रचयिता धानन्द वर्धन उसी की समा का पण्डित था । बिसे भारत ने अपना मूर्धन्य रसर्पिष्ठ माना । उसका मंत्री सुर्य अपने सार्वभूमिक कार्यों से इतिहास में प्रसिद्ध हो गया है । उसने भेलम की धारा

बदल दी और उससे अनेक नहरें निकालकर उसकी तसेटी से निकले खेतों को सींचा। धान महंगी की चोट खाये हमें पढ़कर कुछ कम सन्तोष नहीं होता कि किस प्रकार सुम्प के प्रयत्न से फमी २०० बीनारों का एक क्षरी मिमने बाला बाबल केवल ३६ बीनारों में मिलने लगा था। उसका नाम धान भी घोपुर कस्बे के नाम में सुरक्षित है।

८८३ ई० में अदन्तिवमन के मरने पर कश्मीर में भयकर गृह-युद्ध छिड़ गया। भाई-भाई के खून का प्यासा हो गया। अन्त में उसका पुत्र शकरवमन गद्दी पर बैठा। उसने दूर-दूर तक घाबे किये, भेसम और चिनाव के बहाव से गुजरात तक, प्रतोहारों के राज से कोंगड़ा तक। पर मुठों ने उसकी अर्थनीति कोपट कर दी कोप खाली हो गया। तब उसने मन्दिरों और प्रजा को सूटना शुरू किया। ९०२ ई० में हजारा के घाबे से सौटता बह राह में मरा। फिर उसका बेटा गोपालवमन गद्दी पर बैठा। उसी के शासन काल में उसके मंत्री प्रभाकरदेव ने काबुल से साहिय राजा सामन्तदेव को परास्त कर उसकी साहिय गद्दी पर सोरभाणकमलुक को बिठाया। गोपालवमन को घाबे का ही मर गया और तब से ९३९ तक निरन्तर अराजकता देश में फैली रही।

इस बार अलाउद्दीन खान के सेना के दो दल 'शम्शिर' और 'एकान्ग' थे, जिनके अत्याचारों से प्रजा त्राहि त्राहि करने लगी। सन् ९१७-१८ में कश्मीर में बालक राजा पार्थ के समय इतिहास प्रसिद्ध अकाल पड़ा। पर राजदरवार उससे बिमुक्त था। प्रजा अन्त के अभाव में तड़प-तड़प, मर रही थी, पर राजकुल मंत्री

घोर लम्बिन् कहल्ल के शब्दों में "सभित चाबस की राशियों को मनमाने दामों घेब-घेघ धनस्त धन इकट्ठा कर रहे थे ।" पार्थ का बेटा उग्रसावन्सी केवल दा सास के लिए गद्दी पर बैठा पर उन दो छासों में उसने कश्मीरियों को नरक की याद विभा दी । नाम क ही अनुसार उसके गुण भी थे । उसने ज्येन्द्रबिहार में प्रव्रजित पिता की हत्मा कर दी माइयो को निराहार रखकर मार डाला । उसके बाद कुछ महीनों में शासन उसके कुल से छिन गया ।

६३६ ई० ब्राह्मणों ने मोपासवमत के मंत्री प्रमाकरदेव के पुत्र यक्षस्कर को राजा चुना । उसके शासन में शान्ति मौटी । उसने पुत्र संग्राम को मारकर मंत्री पर्यगुप्त ने गद्दी हड़प ली और एक नये कुल की नींव डाली । इस कुल की सबसे प्रसिद्ध घोर संसार के इतिहास में धपना स्थान रखने वाली रानी बिदा हुई । वह कावुस के भीमघाही की नातिन और पुछ के मोहर सामन्त सिहुराज की पुत्री थी । उसने घाघी सदी तक (६५०-१००३ ई०) बड़ी प्रवीणता सं राज किया पहले राजा सोमगुप्त की रानी के रूप में फिर धपन पुत्रों के धमिमावक के रूप में, धन्त में स्वयं गद्दी पर बैठकर । लड़ाई में वह मिस्र की उस प्रसिद्ध मामलुक मसका सुबुद्धर की तरह सेना का नेतृत्व करती थी जिसम क्रूसेडों के नेता इंग्लैंड के राजा 'सिंह हृदय' रिचर्ड को बन्दी कर लिया था । परन्तु शासन में वह उससे कहीं दस थी । डामरों और ब्राह्मणों की दुस्मनी के बावजूद उसने कश्मीर की राजनीति में धपना साका पलाया । तुंग नामक लस की वह प्रियसी थी । वहीं तुंग कुछ काल बाद

तक कश्मीर की राजनीति पर छाया रहा और महमूद गजनवी के विरुद्ध रण में भी गया। दिहा ने मरते-मरते कश्मीर की गद्दी अपने पिता के सोहर कुल को सौंप दी। अपने भतीजे संप्रामराज को गद्दी पर बिठा उसने कश्मीर में सोहर राजवश की नींव डाली।

सोहरों के धारम-काल में तो तुंग ही सर्वोत्तम था। १०१४ ई० में जब त्रिसोजनपास साहिय ने महमूद गजनवी से लड़ने के लिए हिन्दू राजाओं को धामत्रित किया तब कश्मीर की प्रार से तुंग भी सड़ने लगा। महमूद ने सात वर्ष बाद कश्मीर जीतने की भी कोशिश की, पर सोहकोट का घेरा डालकर भी उसे न जीत सकने से निराश होकर वह पमाव सौट गया। कश्मीर उस तवाही से तो बच गया, पर घर की तवाही उसे ले डूबी। डारों के धन्याचार से प्रजा त्राहि त्राहि कर उठी। फून-तञ्जर भाषे दिन का राज हो गया। कामुकठा, यड्यत्र, हत्या महसों का शृंगार घनी। १०८६ ई० में हर्ष नाम का होनहार राजा गद्दी पर बठा। लगा दया बदसगी पर वह भी धत्यस्त क्रूर और कामी निकला। सेना में उसने कुछ जनरल नियुक्त किये और मन्दिरों को अपवित्र करने और उन्हें सधा प्रजा को लूटने की प्रदुभुत योजनाएं बनाईं। फिर बंग डारों की लूटमार का शिकार हो गया। और अन्त में १३३६ ई० में शाह मीर ने 'श्री सम्म दीन' (सम्मुदीन) नाम से कश्मीर पर मुस्लिम शासन स्थापित किया। राजभाषा फिर भी कश्मीर की ब्राह्मणों के प्रभुत्व के साथ, संस्कृत ही बनी रही। हिन्दू शासन के साथ कश्मीर के इतिहास का पूर्वार्ध

घोर उग्रिन् बरुहण के शब्दों में, 'संभित भावस की राशियों को मममाने दामों बेच-बेच धनन्त धन इकट्ठा कर रहे थे ।" पार्थ का बेटा उमतावस्ती केवल दो साल के लिए गद्दी पर बठा पर उन दो सालों में उसने कश्मीरियों को मरक की याद दिला दी । नाम के ही अनुसार उसके गुण भी थे । उसमें ज्येन्द्रबिहार में प्रव्रजित पिता की हुर्या कर दी, भाइयों को निराहार रखकर मार डाला । उसके बाद कुछ महीनों में शासन उसके कुल से छिन गया ।

१३६ ई० ब्राह्मणों ने गोपासवर्मन के मंत्री प्रभाकरदेव के पुत्र यद्यम्बर को राजा बना । उसके शासन में शान्ति भोटी । उसके पुत्र सुभ्राम को मारकर मंत्री पद्मगुप्त ने गद्दी हड़प ली और एक नये कुल की नींव डाली । इस कुल की सबसे प्रसिद्ध और ससार के इतिहास में अपना स्थान रखने वाली रानी दिहा हुई । वह काबुल के भीमशाही की नातिन और पुछ के लोहर सामन्त सिंहराज की पुत्री थी । उसने आधी सदी तक (१५०-१००३ ई०) बड़ी प्रवीणता से राज किया पहले राजा क्षमगुप्त की रानी के रूप में फिर अपने पुत्रों के अभिभावक के रूप में अन्त में 'स्वयं' गद्दी पर बैठकर । सड़ाई में वह मिला की उस प्रसिद्ध मामलुक मसका सुजुबहर की तरह सेना का नेतृत्व करती थी जिसने क्रूसेडों के नेता इन्सेड के राजा 'सिंह हृदय' रिचर्ड को बन्दी कर लिया था । परन्तु शासन में वह उससे कहीं दक्ष थी । डामरों और ब्राह्मणों की बुद्धिमी के बावजूद उसने कश्मीर की राजनीति में अपना साका पलाया । लंग नामक लस की वह प्रेयसी थी । बही सुम कुछ कास बाद

तक कश्मीर की राजनीति पर छाया रहा और महमूद गजनवी के विच्छेद रण में भी गया। दिहा ने मरते-मरते कश्मीर की गद्दी अपने पिता के सोहर कुल को सौंप दी। अपने भतीजे संघामराज को गद्दी पर बिठा उसने कश्मीर में सोहर राजवंश की नींव डाली।

सोहरों के धारम-कास में तो तुग ही सर्वोत्तम था। १०१४ ई० में जब त्रिलोचनपाल साहिय ने महमूद गजनवी से मङ्गने के लिए हिन्दू राजाओं का आमंत्रित किया तब कश्मीर की ओर से तुग भी मङ्गने गया। महमूद ने सात वर्ष बाद कश्मीर घीतने की भी कोसिख की, पर सोहकोट का घेरा डालकर भी उसे न घीत सकने से निरास होकर वह पजाब लौट गया। कश्मीर उस तवाही से तो बच गया, पर धर की तवाही उसे से डूबी। डामरों क घत्याचार से प्रभा त्राहि त्राहि कर उठी। सून-सञ्जर धाये दिन का राज हो गया। कामुकता, पडयत्र, हत्या महसों का शृगार घनी। १०८६ ई० में हर्ष नाम का हीनहार राजा गद्दी पर बठा। सगा दधा बबलेगी, पर वह भी अस्थन्त शूर और कामी निबन्धा। सेना में उसने सुक जनरल नियुक्त किये और मन्दिरों को धपबित्र करने और उन्हें तथा प्रजा का भूटने की घदभुठ योजनाए बनाई। फिर देस डामरों की सूटमार का गिकार हो गया। और अन्त में १३३६ ई० में दाह मीर ने 'श्री सम्भ दीन' (शम्भुदीन) नाम से कश्मीर पर मुस्लिम शासन स्थापित किया। राजभाषा फिर भी कश्मीर की ब्राह्मणा के प्रमुत्ब क साथ, संस्कृत ही बनो रही। हिन्दू शासन के साथ कश्मीर के इतिहास का पूर्वार्ध

समाप्त होता है ।

शुरू के मुस्लिम राजाओं ने काश्मीर के शासन में गढ़ब की सहिष्णुता का परिचय दिया । प्रायः वसा ही जैसा ६०० वर्ष पहले सिन्ध में अरबों ने दिया था । उन्होंने कश्मीर की समूची संस्कृति भ्रष्ट कर दी, बल्कि स्वयं वे उस संस्कृति के भ्रष्टाकार बने । संस्कृत को उन्होंने अपनी राजभाषा बनाया । उसी में सिक्कों पर शेर लिखावाए, उसी में अपनी प्रशस्तियाँ लिखवाई । ब्राह्मण न केवल वहाँ सगान का वसूली के लिए नियुक्त थे बल्कि सारा शासन ही उन्हीं के सहकार से चलता था । वही मंत्री थे, वही शासक । बहुत काम पीछे तक उनका यह व्यवसाय कश्मीर में बना रहा । जेनुन घाबीदीन का प्रजा-वत्सल शासन आज भी कश्मीरियों का रामराज्य की तरह याद है ।

कश्मीर की ङाणियों से उतरकर ब्रिटिश भारत या राजवाड़ों में अपना भाग्य परखने की कश्मीरी प्रवृत्ति केवल आज या हाल की ही नहीं पुरानी भी है । प्रसिद्ध कवि कामिदास क्षमेन्द्र धावि ने तो गंगा-गोदावरी की घाटियों में ही रहकर नाम कमाया, यद्यपि स्वयं काश्मीर से भारतीय मुखरित करनेवाले साहित्यिकों की कमी न थी । राम और अमरकार के क्षेत्र में जितना साहित्य कश्मीर ने प्रस्तुत किया भारत के किसी अन्य प्रांत ने नहीं ।

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में भी धीरे-धीरे कश्मीर का नाम लिया जाने लगा । चीन ईरान काबुल आदि की प्रसरनीति का केन्द्र तो वह अनेक बार रहा ही था । अरब मुस्कों की राजनीति सवारने में भी उसके साइनों ने कुछ कम प्रयत्न न किये । यहाँ

उदाहरण के लिए केवल एक तिसक की घोर संकेत कर देना काफी होगा। अभी रानी दिहा को मरे कुछ ही दिन हुए थे, उसका प्रमी तुग अभी खिन्दा ही था कि नाई का धार्क्यक वेटा तिसक कश्मीर से गजनी जा पहुँचा। वह घायद राजा मोब और दिहा दोना का ही कनिष्ठ समकामीन था और दोनों की सेनाओं को समवत उसने त्रिलोचनपास के ऋडे व नोष सङ्गते देखा था। उसने गजनी के दरवार को धक्स और हुनर से जीतना चाहा था। मुसलमान समकामीन इतिहासकारों ने उसकी वेद्वन्वहा शारोफ़ सिखा है। वे लिखते हैं कि तिसक प्रसा पारण वाचाम प्रसामायमुल्लक—हिन्दी और फ़ारसी दोनों का—था। उसने बूटनीति और घोलाघड़ी कश्मीर के अनुपम बूटनीतियों से सीसी थी। वह जादूगर भी था, मोहन बधीकरण जाननेवाला भी क्योंकि सब उसके जादू के मारे थे, जो उसके मिसता उसी का होकर रहता। कब और कसे वह गजनी पहुँचा यह कोई नहीं जानता पर यकायक उसका नाम मसहूर हुआ। स्वयं महमूद उसका नायक हो गया और उसके प्रधान मंत्री इबाजा अट्टुरज्जाक ने उस अपना समाहाकार दुमापिया और गुप्त भेदों का सेत्रटरी नियुक्त कर लिया। महमूद के बेटे खूँखार मसूद पर तो वह इस क्रूर हावी हुमा जो कल्पना-सीत है। उसने उसे अपनी हिन्दुस्तानी फ़ौजों का अनरल बना दिया उसे छप और दाही घामियाने का हकदार बनाया। तिसक के फ़ौजी ऋडों में भी सोने के पेंच लगने लग, उसके दरवाजे पर भी नौवत बजने लगी। एक काम उसने गजब का किया। नियास्तिगिन कश्मीर का हाकिम था। वह बागी हो

गया। उसने मना करने पर भी, बग़ार पर हमला किया था। पूरब में कोई मुसलमान बिजेता अब तक इतना दूर नहीं जा सका था स्वयं महमूद तक नहीं। महमूद ने नियामतिगिन को पकड़ने के लिए सेना पर सेना भजी पर उसे मार साकर लौटना पड़ा। किसी जनरल की उधर जाने की हिम्मत जब न हुई तब तिसक ने उसे सर करने का बीड़ा उठाया। सेना लिये वह साहौर पहुँचा और बागी क़ौमों के पैर उखड़ गए। नियामतिगिन भागा। पर तिसक को तो उसका सिर चाहिए था महमूद हार से क्या बनता? तिसक सड़ाई केवल तसघार की नहीं सकता था उसका इष्ट दाव-येन में था। उसने भट्ट जाटों को साधा और एक सास गाँवी के सिक्कों के बदले नियामतिगिन का सिर उसके खेमें में घा पहुँचा जिसे तीसरे ही दिन तिसक ने महमूद के बस्तरखान पर आ रखा।

गुनाम घाए और तुर्क खिसत्री और तुगलक सैयद और सोधी पर सिवा अब-तब उधर रख कर सेने के कोई कश्मार को पूरे तौर पर शासन में मिला न सका। सूरों ने घायद कुछ प्रयत्न किये पर उसकी सही जीत का सेहरा १५८७ ई० में अकबर के ही सिर बधना था। मुगलों ने बार बार अपने पुरखों को जमीन फ़रामा और वहाँ की घाटी पर कब्जा करना चाहा था, बार-बार उन्हें मुह की खानी पड़ी थी, पर कश्मीर की सुशनुमा घाटी जो उनको बलुए में मिसी उसने उनकी हार जीत में बदल दी। क्या प्राकृतिक बुरसूरती क्या केसर आयफ़ान की खेती, दोनों रूप में। अकबर से कहीं बढ़कर उसका मोह जहांगीर और नूरजहाँ को था। शामीमार

बाग की हरियाली में बाबर की छाया जैसे मंदिर जहाँगीर की कान्हा में उठर घातो और वह सल्तनत की परेशानियाँ भूल जाता। वहीं नूरजहाँ ने गुलाब का इत्र निकला वहाँ दानों प्रती हर साल गर्मी क महीन विमान लग। साहजहाँ स्वयं कश्मीर का दीवाना था। हर साल वह भी कश्मीर जाता। वह घाटी श्रीरंगजब की हुकूमत तक बराबर मुगलों के शासन में बनी रही—तब तक जब तक गिल्ली की सल्तनत टूक-टूक न हो गई।

कालान्तर म कश्मीर में साम्रा सरकार की भी हुकूमत कायम हुई। कबस कुछ काल। धीरे-धीरे मारा भारत प्रपञ्चों क अधिकार में आ गया। पहले ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकार में फिर पार्लामेंट क अधिकार में। एक दिन जब महाराजा रणजीतसिंह के उत्तराधिकारियों क हाथ स काहनूर क साय-साय सनसज क पूववर्ती प्रान्त निकल गए, प्रपञ्चों की नजर सब कश्मीर पर पड़ी। रणजीतसिंह क बाद ही पञ्जाब डूवा और मास ही कराकोरम की भोटियाँ भी इंगलिश बनल में उतरने लगीं। डोगरों न सब कश्मीर खरीद लिया और वह सुननुमा घाटी फिर हिन्दू हुकूमत में आई जिसकी जनता धर्यन्त वहुमत स तमवार के जोर स बनी मुसलमान थी। उमक बाद या पहल का इतिहास वस्तुतः उतिहास का नहीं तारीख-नबीमी का प्रथ्याय है। अब कश्मीर हय एकान्तों की और कामरों का न था पर लून-खन्बर के प्रभाव में भी कुष्ठा और स्वच्छाचारिता का जो व्यापार गए कश्मीर में हुआ वह स्वयं कुछ कम न था। डोगरे राजाओं के विदेशों में

पानी को तरह ऐश पर खपा वहाने में किमो रजवाब को घाने न रहने दिया । प्रजा भूखी-मगी घमी रही देश का खपा बाहर के सरायों गानारों में घरसता रहा ।

यह सम्भव न था कि यह स्थिति बराबर चसती रहती । भारत ने महात्मा गांधी के नेतृत्व में आजादी का झंडा उठाया । उस आजादी की मांग की लहर ब्रिटिश भारत के बाहर रियासतों में बह चसी । कश्मीर भी मैदान में उतरा । वहाँ भी कुर्बानियाँ होने लगीं लोग जान पर येमने लगे । पहले रियासत कांग्रेस ने ही धन्यत्र की ही भाँति आजादी के नारे बुलन्द किये फिर उसके सारे राष्ट्रीय काय राष्ट्रीय काङ्कस ने अपने हाथ में ले लिए ।

सन् ४७ में देश आजाद हुआ । देश का बटवारा हो गया । पाकिस्तान और हिन्दुस्तान दोनों में इन्सान का खून इन्सान ने बहाया । सींग बरबाद हो गए उनके घर उखड़ गए । दुनिया के इतिहास ने आदमी की इतनी बड़ी आवादी का उखड़ना नहीं देखा था । उसी बीच कश्मीर पर हमला हुआ । हमला पाकिस्तानी मदद से कबोलाई पठानों ने आजाद कश्मीर के नाम पर किया जिससे कश्मीर पाकिस्तान में शामिल हो जाए । पर कश्मीर को पाकिस्तान में शामिल होना गवारा न था । उसका हित भारत के साथ था । उसने भारत का दामन पकड़ा । राष्ट्र ^व और कश्मीर ^न हिन्दु-

करना, अपना धंग हो जाने के कारण भय साधनी था। भारतीय सेनाएँ कश्मीर की ढ़ाहाइयों पर बढ़ गईं। पाकिस्तान चाहिरा इन्कार करता भी मोर्चे पर सड़ता रहा। पठान उत्तर-पश्चिम के कश्मीरी गाँवों को पाकिस्तानी सेना की सहायता से घुटते-जमाते रहे। लोगों का वरस करते रहे, घोरतों की प्रसन्नता घुटते रहे। और उभर की सारी जनता मुसलमान थी! पर उस मोर्चे पर कश्मीर की उस सड़ाई में सभी एक-राय थे—कश्मीरी जनता और सरकार भारतीय जनता और सरकार काप्रसी, हिन्दूसभाई कम्युनिस्ट समाजवादी सभी। पाकिस्तान वह सड़ाई हारकर झुमसा उठा। उसे अपना हमसा स्वीकार कर झूठ निगस जाना पड़ा। सड़ाई रक गई। भारत ने मामला संयुक्त राष्ट्र-संघ के सामने रग दिया था सो वहाँ से सरहूँ की समाप्त के लिए एक जल्पा था पठुषा निमित्तब जिसका अध्यक्ष था। याव वहीँ की वहीँ रह गई। कोई हस न हुआ। कश्मीर में संविधान-समिति बनी और उसी के लिए संविधान द्वारा छव तक वहाँ पासन होता रहा जब तक कश्मीरी जनता ने अपने चुनाव द्वारा भारत का छव राज्य स्वीकार न कर लिया। उसकी सरक्षा की जिम्मदार भारत की सरकार है, नीतरी हुकूमत की खुद कश्मीरी सरकार भय भारतीय राज्यों की ही तरह।

पाकिस्तान ने इस बीच कुछ पेंतरेवाजी पुरु की, उसके भसवारों ने जिहाद का हम्सा घोसा। हिन्दुस्तान चुपचाप उसे मुनता रहा। कश्मीर के मस्ले को इधर रोग घ्युल्सा की बसतताओं और कुछ स्थानीय तथा भारतीय दसा की

जल्दबाजी ने और उलझा दिया। जनसभ्य प्रादि ने सत्याग्रह शुरू किया कश्मीर में सत्याग्रहियों के जल्द जाने और जेल में ठूसे जाने लगे। तभी क्याभाप्रसाद मुखर्जी कश्मीर सरकार के हुक्म की उपेक्षा कर कश्मीर पहुंचे और पकड़ सिये गए। जेल में ही उनकी मृत्यु हुई।

इसी बीच कश्मीर राजनीति में एक नई गतिविधि का भंडाफोड़ हुआ। जेल अन्वुल्मा स्वतन्त्र कश्मीर का स्वप्न देखने लगे थे और भारत पं मेहरू और कश्मीर सबके सिसाफ्र बेवफ्राई पर आमादा हो गए थे। पता लगते ही सदरे रियासत की करणसिंह ने मंत्रिमण्डल बर्खास्त कर उन्हें गिरफ्तार कर लिया। अपने मंत्रिमण्डल में अल्पमत होते भी जेल साहब जो स्वेच्छा चारिता करते रहे थे उसका राज अब खुसा। बख्शी गुलाम मुहम्मद ने सदरे रियासत के निमंत्रण पर अपना मंत्रिमण्डल बनाया और राष्ट्रीय काँग्रेस और सविधान समिति ने एकमत होकर उन्हें स्वीकार किया। सत्ता की ही भांति आज भी कश्मीर और भारत एक हैं।

६ | भारत को अमरावती कश्मीर

ध्रुव से ध्रुव तक की पृथ्वी के प्रसार में प्रकृति ने जहाँ-तहाँ अपने विशेष आवास के लिए सौन्दर्यस्मय बनाए हैं। पीर कश्मीर उसके उसी आवास का अभिराम कोड़ास्थल है। पीर पंजाब और कराकोरम से घिरी सिन्धु भेलम और चिनाब की घाराओं से सिंचित कश्मीर की घाटी भारत की अमरावती है, उसके देवताओं का विद्यामागार उसके कवियों का उद्गम जिसके कुसुमनिषय का केसर के वन्य का भौगोलिक सुपमा का वल्लान करते वे कमी थके नहीं। वरनिये और देखीदेरी फोस् टर और विन्ये, स्टाइन और प्रियसन, वान्ट और टेम्बुल की यह स्तुत्य भूमि अपनी सुपमा की सम्पदा में कितनी कमनीय है यह कहना न होगा। साहित्यकार और भावातुर यात्री सदियों से रीक-रीक उसके लालारखी बौरूपन पर न्योछात्र होठे रहे हैं।

कहा है यह देश ? पीर पंजाब की किसी ऊँचाई से नीचे नजर डालिए, लालेदबरी और मन्द श्रृष्टि की यह घाटी हज़ारों फुट नीचे से सहृष्टा उठकर घाँवों में समा जायेगी। उधर बे पीर पंजाब की चोटियाँ हैं, कोन्सर नाग माठाकोटि और रोमेस घोंग जिसे प्रार्थर नीच ने अपने प्रारोहण का सफल

अल्दबाखी ने और उसका दिया । जनसंघ आदि ने सत्याग्रह शुरू किया कश्मीर में सत्याग्रहियों के जल्ये जाने और जेल में ठूँसे जाने लगे । तभी दयामाप्रसाव मुखर्जी कश्मीर सरकार के हुकम की उपेक्षा कर कश्मीर पहुँचे और पकड़ लिये गए । जेल में ही उनकी मृत्यु हुई ।

इसी बीच कश्मीर राजनीति में एक नई गतिविधि का मजाफोड़ हुआ । जेल अन्दुल्सा स्वतन्त्र कश्मीर का स्वप्न देखने लगे थे और भारत में नेहरू और कश्मीर सबके खिलाफ वेबकाई पर धामादा हो गए थे । पता लगते ही सवरे रियासत श्री करणसिंह ने मंत्रिमण्डल दखास्त कर, उन्हें गिरफ्तार कर लिया । अपने मंत्रिमण्डल में अल्पमत होते भी जेष्ठ साहब जो स्वैच्छा धारिता करते रहे थे उसका राज अब खूना । यक्षी गुलाम मुहम्मद ने सवरे रियासत के निमंत्रण पर अपना मंत्रिमण्डल बनाया और राष्ट्रीय काँग्रेस और सविधान समिति ने एकमत होकर उन्हें स्वीकार किया । सदा की ही भाँति आज भी कश्मीर और भारत एक हैं ।

६ | भारत की अमरावती कश्मीर

ध्रुव से ध्रुव तक की पृथ्वी के प्रसार में प्रकृति ने जहाँ-जहाँ अपने विशेष आवास के लिए सौन्दर्यस्यल बनाए हैं। कश्मीर उसके उसी आवास का अभिराम श्रेष्ठात्मक है। पीर पंजाल और कराकोरम से घिरी सिन्धु बेसम और चिनाव की घाटाओं से सिंचित कश्मीर की घाटी भारत की अमरावती है। उसके देवताओं का विद्यामण्डल, उसके कवियों का उद्गम, जिसके कृमुनिचय का केसर के कमल का, भौगोलिक सुपमा का बखान करते वे कमी पके नहीं। वरनिये और देबीदेरी फोस्टर और विन्से स्टाइन और प्रियसन, वानेट और टेम्पुल की बहु स्तुत्य भूमि अपनी सुपमा की सम्पदा में किन्तनी कमनीय है यह कहना न हागा। साहित्यकार और भावातुर यात्री सदियों से रोम-रोम उसके आलादक्षी वाकपन पर न्योछावर होते रहे हैं।

कसा है यह देग ? पीर पंजाल की किसी ऊँचाई से नीचे नजर डालिए, सामश्वरी और नन्द श्रृषि की बहु घाटी हज़ारों फुट नाचे से सहसा उठकर पर्वतों में समा जायेगी। उधर से पीर पंजाल की चोटियाँ हैं, कान्तर नाग भाताकोटि और रोमेश शॉंग जिसे भार्यर नीव ने अपने भाराहण का सफल

सक्य बना 'सनसेट पीक' नाम दिया,—अस्ताचल की चोटी । सही उदयाचल से उठकर वासारुण जब आकाश की मूर्धा पर मध्याह्न में प्रसर मरीचिमासी धन त्रिविक्रम के एश्वय से गगन शीघ्र अस्ताचल की घोट होता है तब धोंग पर्वत की चोटी पर सोना बरस पड़ता है और तब अन्धकार का प्रबल अहेरी अपने विभ्राम की ओर जाते हुए भी प्रकाश के कोटि कोटि तीर तिमिर पर छोड़ चलता है ।

उधर उत्तर पञ्चम पर्वतमासा का वह तोसा मदान शीशों को भरबस धींच सेवा है । मैदान घास से ढका, जिसके विस्तार पर गड़रिये अपने डोर निचे बिचरा करत हैं । पर मैदान से आप यह न समझें कि वह कश्मीर की घाटी का फैलाव है । ना उसकी ऊँचाई चौदह हजार फुट से कम नहीं जो सदियों में बर्फ की परतों से ढक जाया करती है और जिसके निकटवर्ती देवदारु के वृक्षों की डालियों से स्फटिक की सुइयों की शक्ति की बर्फ सटक जाती है, जब उनसे टपकती पानी की बूँदें घनी शीत और पासा की मारी पिरते-गिरते सहसा जम जाती है ।

उत्तर-पश्चिम उत्तर से भी अधिक पश्चिम वह काजो भाग की शृंखला है माटसोरों की निवास भूमि बारह हजार फुट से भी अधिक ऊँची, अपना हिमधवल मस्तक उठाये जिसकी इतना देवदारुओं के वनों से ढकी है । और वह नंगा पर्वत है, २६ हजार फुट से कहीं अधिक ऊँचा चाटी की इस विधा का अदम्य प्रहरी ।

उधर दूर कराकोरम की गगनचुम्बी पर्वत मासा है,

मुस्ताग, जिसकी अनेक चोटियाँ २५ हजार फुट से भी ऊपर उठ जाती हैं। उसी श्रृंखला में अगत्रविख्यात वह हिमनिखर है, हिमालय की एवरेस्ट के बाद सबसे ऊँची चोटी, जो अपने २८ हजार फुट से कहीं ऊँचे टिकासन से जैसे आकाश को टेके हुए है।

मुस्ताग का वह एख्य अंगर तनिक दब जाता है तो मात्र उस हरमुख गिल्लर से ही जिसकी १७ हजार फुट की ऊँचाई से कहीं ऊँची उसके देवत्व का महिमा है जिसका रससिक्त वणन कालिदाम ने हमकूट के नाम से किया है। यह कुछ अकारण नहीं कि कश्मीरी जनविश्वास उसकी पन्ना सदा दौलत की साँप-काटे की दवा मानता है। हर के अयाग से निश्चय कभी भुजग भी उस घौडर दानी भोगानाथ के कृपापाशों का अन्त्य नहीं कर सकता। कश्मीरियों के अद्यय उस हरमुख के दक्षिण अक्षांश पर्वत का शिखर स्वयं कुछ कम अद्यय नहीं और शीष्म की सुपमा में तो उस पर चढ़नेवाले यात्रियों की अट्ट परम्परा बन जाती है।

कश्मीर की अमित घाटी की दक्षिण दिशा में अमरनाथ का हिमपुत्र खड़ा है जिसका अनुमसख्य अपनी अमिराम विमिश्रता में सानी नहीं रखता। १० नहर न अपनी आत्मकथा में इसी अमरनाथ का आकषक उल्लेख किया है जो भारत के माल का भाँति हमारे देश का एक सिरा बनाता है जस उसका दूनरा सिरा सागरसंलम्ब कुमारी बनाती है। उसी श्रृंखला में कोसाहाह का गिल्लर अमरनाथ से भी ऊँचा है जिसकी आणाकृति पर जब मुख का मूरज अमक उठता है

सब प्रतिबिम्बित रूप की भाँति उसकी छोटी पर नजर नहीं ठहर पाती ।

हिमांचल की गरिम गिरिमाला अपनी गोद में डाल प्रकृति की जिस प्रीतिभूमि की रक्षा करती है उस कश्मीरी घाटी का कलवर कमलवहो से भरपूर है । घाटी की मीठे जल की झीलों को प्राकृतिक सुपमा का प्रेमी कौन नहीं जानता ? वृमर, डल मानसजल । एशिया का सबसे बड़ी मीठे पानी की झील वृमर घाटी के उत्तर-पूरव अपने विस्तार में अनुवर्ती गिरि शिखरों को घमिराम प्रतिबिम्बित करती है । नीचे श्रीनगर से जगा डल का विस्तार है, पर्वत-श्रेणी के चरण भूमि । परवर्ती गिरिमाला प्रतिबिम्बित उसके जल को कोई अज्ञान में खड़े तरुणों की झुरमुट से झोक कर लेते । गमियों में उसका जल लंगर डाले नौनिवासों की कतारों और छिटपुट विह्वलते शिखरों से डक घमता है जब संसार के धुमककड अपनी तीसी परब स उस घाटी के सौन्दर्य को प्रत्यक्ष घाँते है अथक भोगत है । और उधर वह मानसजल है घाटी की सबसे गहरी झील जिसका हरिताभ नीला जल कितना कमनीय है, यह उसे देखनेवाला घाँसों का घनी ही समझ सकता है ।

यह तो हुई घाटी की निचली झीलों को बात ऊपर पर्वती ऊँचाई की तहों में बिखरी प्रकृति की कामभूमियों-सी नैऋत्य से बुरी भी कुछ झीलें है जिन्हें न दल पानेवाला यात्री कश्मीर से कबोठे मन से लौटता है । हरगुल पहाड़ों से गग न, सूस गूस और सबल है जो १२ हजार फुट से भी ऊँची

भूमि पर फैली है।

पीर पन्नास के दक्खिन-पूरव घट्ट कोन्सरनाग है, करीब १३ हजार फुट ऊँचा गिरि-श्रृङ्गला की तीन चोटियों से घिरा, जिसे गसते हिम की झूट घारा सदा भरती रहती है। यही कोन्सरनाग घायद उस मेसम का उद्गम है जो घाटी को घेर-घर अपनी प्रकृत दिशा से सौट-सौट, उसे उसे छोड़ने के डर से सहमी बहती है। उधर लिङ्कर घाटी, कोसहोई और खेपनाग के गमगियर हैं हिमभूमि, जिनकी बर्फ की गसी घाराएँ गमियों में अपने शीतल जल से घाटी के निवासियों को अभितुष्ट करती हैं। घलपरपर भ्रुवरवत का जमा जल प्रसार खिसनमग के ऊपर है जिसके स्पे बहिरग से चोट का यात्रियों के दस हुरवान और घासीमार की घाराओं क तीर ही सेते हैं जिनका जल अमरनाथ के तारसर का वरदान है। यही जल श्रोनगर को प्यास मिटाता है।

घाटी की जमीन अपने विधिभ ठहरे अथवा जल में बहते धान के सेतों के अनुबर्ती उन धीरों जिनारों और सफेनों के फौरे बग से बकी है जिनका बिस्तार आमूदरिया की घदल्गा और करणना की याद यात्रियों में साजे कर देते हैं। फिर भूमध्यसागर-वर्ती अनेकानेक तरुवस जहाँ-तहाँ सहमा घाँसों में उठ आते हैं जिनके फसों से अभाकर उनके शेष बमव को कश्मीरी भारत की घार सरका देते हैं। बादाम और पिस्ता, अन्नरोट और नाख, मादापानी और खरी अगूर और दाख अमित मात्रा में यहाँ से भरते हैं जिनके यद्य को अगर कोई वस्तु मसिन कर सक्ती है तो वह कश्मीर में ही बुनी उन

घासों की परम्परा है जिसने दीर्घ काल तक संसार के राजाओं का मण्डन किया है और जिनमें स अनेक का विस्तार असामान्य होकर भी कभी घावमी की वषी मुद्ठी में समा सञ्चता था ।

इसी घाटी की कमनीयता ने गायक कविया के मन को मदिर कर दिया था और उन्होंने कितने ही सलिन काव्य उसकी सुपमा से प्रभावित लिख डाले थे । भसु मन्ट और रत्नाकर, शिवस्वामी और क्षेमेन्द्र, सोमेन्द्र और सोमदेव मंसक और विल्हण जस्हण और ज्योतराज ने उन्मत्त हो-हो कश्मीर की इस घाटी के अन्तरग-बहिरंग से अपनी कृतियाँ भरी-पूरी कीं । इसी की भूमि ने बुलबुल शाह और शाह हुमायान को रिक्ता किया था जिनकी सूफ़ी घावाब इसक गाँवों-नगरों में गूज उठी थी । इसी भूमि पर शाह नूरुद्दीन ने अपने नवस्वीकृत नन्द नाम से 'श्रुतियों' की वह परम्परा कायम की जिनके 'बाब्' कश्मीरी साक-साहित्य की घावाब बन गए हैं । उसी 'बाब्' की धनी गायिका इस नन्द श्रुति की समसामयिकी वह कश्मीर की मोरा लाल देव (लालेश्वरी) थी जिसके मदिर गायन के वातावरण में कश्मीरी घाब मो सांस भेता है जिसके गीत भाब भी वह अनायास गुनगुना भेता है । रूपभवानी और जमन देव भी उसी परम्परा की रहस्यमयी साधिकाएँ थीं ।

पर उस परम्परा से भिन्न उन नारियों की परम्परा भी कुछ कम न थी जिनकी शक्ति ने पुरुष के पौरुष को राजनीति में चुनौती दी । और स्वयं कश्मीर के सिंहासन पर

घेठ कश्मीर का जिन्होंने सफल शासन किया—उन यशोमती, सुगंधा, दिहा भूटा की।

और यह परम्परा भारत के पीर पंजाब के पीछे फैसे तन का एकांग है—उसका उत्तमाय प्रकृति का सवारा अनुपम मुत्तमण्डल। जमी तो उसके अन्तर से उठ-उठ कवियों ने समूची भारतीय साहित्य भारती को मुद्गर किया और उन कवियों के अभिमत माग को अपने सहृदय समित विप्रान से जिन्होम प्रशस्त किया वे थे कश्मीर के ही—मामह और वामन, उद्भट और मम्मट क्षमेन्द्र और कुन्तक आनन्दवधन और अभिनवगुप्त और रुम्यक।

बही कश्मीर जैसे सदा से अखण्ड भारतीय सस्कृति का अंग रहा है आज अनायास भारत का राजनीतिक अंग भी बन गया है जिसकी विधान सभा ने अपने निर्वाचनों द्वारा बार-बार समूचे भारत से अपनी अभिन्न एकता घोषित की है। इसी कारण पाकिस्तान की दुबिनीति और आक्रमण तथा चीन की प्रसरनीति के विरुद्ध कश्मीरी भारत के कोन-कोन से कश्मीर पहुँचे सैनिकों के रक्त में अपना रक्त डाल, उन विदेशी अभियानियों से मार्चों पर जूमते रहे हैं। भारतीय अखण्डता और नवसोमार्यों के प्रसारक कश्मीरी कासिदास मागपुर के निबट के रामटेक से 'मेघदूत' के मधुर द्रुत विनम्वितों में कश्मीर के उस स्वदेध को यक्ष की प्रमविह्वल कागरता से क्यों न पुकार उठे !

१० | केसरिया काश्मीर

काश्मीर से घनी सौटा हूँ। सप्ताह भी नहीं हुआ। कुछ दिन हुए।

तीन दिन जाना तीन दिन घाना, मुसीबत की राह, पर ऐसी, जिसके पहले सिरे पर वह बहिस्त था जिसकी जानकारी खूबसूरती और कला के पारसी मुसलों को थी, जो कभी पोर-पनाम की सफ़ेद बर्फीली ऊँचाइयों को साँघ गये थे।

घर में काश्मीर की खर्चा हुई। बहम ने सिला—पता नहीं काश्मीर पर क्या गुजरे समझौते की बातें चलने लगी हैं। सही, समझौते की बातें चलने लगी हैं, काश्मीर पर जाने क्या गुजरे। पर जैसे गुजर तो वही पायेगा जो हम गुजर जाने द्ये—और बिचारों का एक ताँता बंध गया। फिर हुआ, कि जलू प्यारे काश्मीर को देख भाँडे फिर एक बार, चाहे इसलिए नहीं कि जाने उस पर क्या गुजरेगी इसलिए कि उस धारवा देश में उसके बर्फीले साये में कसम को रोक जरा वम से मूँ और धक्करी बिचारों के नीचे कुछ दुपहरियाँ गुजार भाँडे। जल ही पड़ा। बेटी जिना और बेटी की बेटी सारिका के साथ, जब धापी रात के देर बाद पठानकाट एक्सप्रेस बनारस से रवाना हुई। रातों-दिन दिनों-रात, बस की सर्पिली पहाड़ी चढ़ाईयाँ

घोर साढ़े पाँच हजार फुट ऊँची 'कूद' के पहाड़ों की घोटी का वह डाकड़गला जिसकी सहरी हवा ने पहलो घार जलते मदानों की याद भुला लिवास को छेद जिस्म की गहराइया को छुआ । हम कश्मीर की खुदानुमा घाटी की घोर फिर सर्पीसी नाम से बसने लगे ।

बानिहास का दर्रा खासा ऊँचा है । उसके बाहिने पहाड़ी ऊँचाइयों की परिक्रमा करते कभी वह राह जाती थी आज वही राह जवाहर टनल की कोई पौने दो मील लम्बी सुरंग से पहाड़ो दीवार को छेद जाती है ।

घोर उस पार कश्मीर है, धारदा का वह देश जिसने एक घोर पामीरों को साथ उत्तर की दिशा को ज्ञानराशि सुटाई, दूसरी घोर दक्खिन के भारत को अपनी बेसर के साथ साहित्य की अमर-वेत्ति सीपी । धारदा देश, शीतल, कमनीय । पता नहीं कश्मीर का नाम धारदा कैसे पड़ा—धरद् की शीतलता से वर्षा से प्रसून उम ऋतु से जिसकी शीतलता ने विशिष्ट सर्द फल से कश्मीर को सम्पन्न किया है अथवा सरस्वती के इस साहित्य-मुक्षर पर्याय धारदा से । जो भी हा निस्सदेह धारदा की पत्सविनी सता कश्मीर की भूमि से फल प्रदान सी अन्तरिम भूतल को बकती कभी सिन्धु-गंगा की घाटी को पार कर दक्कन के दक्खिन तक जा पहुँची थी घोर उसकी रसवती भारती ने समूचे देग का आप्तावत किया था ।

कश्मीर का ही वह यक्ष-कवि या बानिदास जिसने अपना अभिगुण जीवन रामटेक के पठार पर महीनों बिना क्षिप्रावर्ती उग्रयिनी को दीर्घकालिक आवास बनाया था । प्रायः सभी

के कश्मीरी रसबर्षी कवि भट्ट मेष्ठ के प्रबन्ध काव्य से प्रभावित राजा ने भोजपत्रों को ठकने वाली बैठन व नीचे सोने का चास रस दिया था—काव्य का रस वही बैठन को भेद, खुन पड़ ।

गुणाङ्ग-विस्मय-वस्त्र-कस्त्र-बोनराज—कहानीकारों काव्यकारों इतिहासकारों को कश्मीरी परंपरा । रत्नाकर सिबस्वामी क्षमेन्द्र सोमेन्द्र मञ्जक की विस्मृति रस की धार से कश्मीर की धरा को सींचा । रसबादियों, धर्मकारशास्त्रियों काव्यसमीक्षकों का तो वह शारदा देश सदा ही श्रीवा भूमि रहा है—मामह बामन, उद्भट छट मम्मट रम्यक, उद्भट धानन्दवर्धन अभिनवगुप्त कुन्तक—काव्यपारसियों की इतनी मन्वी श्रुतसा किसी देश ने नहीं सिरजी । और जब इन्होंने रस और सौन्दर्य की परख की बुनियाद अपने चिन्तन से डाली तब वह चिन्तन की धारा हिमालय और पामीरों को साथ ईरान और अरब इटली और स्पेन के विदग्ध भाषायों के सौन्दर्य-परीक्षण और दर्शन चिन्तन का आधार बनी ।

उसी कश्मीरकी बाटी में अक्षोक के बसाये उसकी राजधानी धीनगर में कमी के जसोक सेवितर मेसम के ठट पर, जहाँ कनिष्क की संरक्षा में पाप्म और अश्वघोष ने बौद्ध संगीति का संघालन किया था, खड़ा हू । और बार-बार वह सर्व उमर पड़ता है—वह प्रवृत्तात्मक वर्द—कि विदेशियों ने जिस सम्भ्रमते में इतना रस लिया है वह भारत के लिए कितना हितकर होगा ? क्या वह सचमुच कश्मीर और यमावर्ती भारत के प्रादिम कास से—गोनर्षों से भी प्राधीनतर कास से बसे

घाते घने सम्यन्ध का कायम और सुरक्षित रख सकेगा ?

कश्मीर पहले भी घामा था, पर तब यह प्रदन सामने न था। दो-दो बार कश्मीर घा चुका था। एक बार प्राय तीन साल पहले, जब कांगड़ा के पहाड़ों में लेखकों का 'वर्कशाप' आयोजित हुआ था और जहाँ से लौटते पठानकोट पहुँचते उस लोभ को संवरण न कर सका था जिसने सदियों पहले मुगलों को अपनी धार बरबस खींचा था। मैं तब बुपचाप बगर किसी पूव आयोजन के, काश्मीर की घाटी में उतर गया था। पर तब पडौसी की पत्नी नज़र घाटी पर रहते भी समझीते का स्वास सामने न था। कश्मीर तब भी घाज की ही तरह भारत का अभिन्न अंग बन चुका था और समझीते के दानवी दाढ़ों के दूर बाहर था।

पहली बार जब कश्मीर गया था, बूसरी धार की ही तरह प्रकेसा था, जब खम्बरों की राह गिलगित के दर्रे-पठार से चित्रास के वाजू में हिन्दूकुश की फनी पर्वतमासाओं को साथ गया था पामीरों से उतरती घामू दरिया की अफ़ग़ानी घाटी का धोर, शहरमुजान से पर, जहाँ बसख से लगी घामूतीरकी बसर की ब्यारियाँ हैं। केसर की ब्यारियाँ तो घनेक हैं—घामू के तार दायद तारीम के तीर भी निदधय जम्मू में, पर काश्मीर की केसरिया ब्यारियाँ न केबस पाम्पुर की गौरव हैं वस्कि उनकी महक सारे भारतीय साहित्याकाश में भिन रही है।

पाम्पुर की ब्यारियाँ मेरे सामने थीं जिनके मासदण्डों पर अभी फूलों का अभाव था—जून में उनका भाव मला कहीं

हा भी कस सकता यद्यपि उनकी याद दिसाने के लिए डा० खान्ता शर्मा ने मुझे जम्मू की बेसर का फूस भेंट कर दिया था, जिससे रेशे सूतकर अपनी कोठ खोल चुके थे और पराग, छूटे ही जिनसे भड़क पड़ता था।

दो साल पहले मागा पहाड़ियों के ठीक नीचे जुरहाट के बाय-बागामों में सशक लडा हुआ था। शका तब चीनी प्राक्रमण की न थी—बाहे रही भी हो पर हमन हमलावर के दाढ़ों को जब तक चीन्हा न था—शका यी मागाओं के इक्के-दुकके छिपे धाकों की। पर सब उनका सतरा एकाकी था उन पर किसी की सह अभी नहीं व्याप पाई थी। और न उन्हें भारत के किसी सतरे का ही गुमान था जिससे उनकी अवसर वादिता पमप सकती।

फिर चीनी घोड़े के अगले ही माह नेफ्रा क उतार की और खाना पड़ा—भूटान सिक्किम, बार्मिनिंग की और। उसके पश्चिम काठमाण्डू में कुछ हा पहले कुछ सप्ताह बिताये थे और उस हिमासय के अटूट प्रसार को गद्गबु आंसा निहारा था जो एक और नागा-खासी के पहाड़ों को छूता है दूसरी ओर कराकोरम और नगा पर्वत के पास हिन्दूकुश को।

उसा कराकोरम और नगा पर्वत की ओर गुलमग के वासन्ती फूलों के मैदान से ऊपर देवदारुओं के अगल पार, उनकी मूर्धा खिमनमग की गीली बर्फ के मैदान में लडा था अक्रवत अलपत्थर की ओर रुख किये। बार-बार अस्सी मील अम्बी पच्चीस मील चौड़ी कश्मीर की घाटी का पर्वत घरे में निहारता प्रकृति की उस अभिराम सुषराई को सराहता, देख-

देख, सिहर सिहर निहाल हाता ।

घोर घब्र इस पर पड़ोसी शत्रुओं की टोने की घास पड़ी है । एक ने उसकी जमीन पर शसत कृष्ण कर मालिकाने सखीपन से उसका हिस्सा हिन्दुस्तान के दुश्मन को सौंपने की धुरंत की है दूसरे ने उसके महास्र को अपने बहष्पन की टेक बनाई है । घोर उन मित्र राष्ट्रों ने यह मोचकर कि अन्देधे की यह हासत एगिया के धाममान पर छापी रह हिन्दुस्तान को हमलावर पाकिस्तान से समझौता कर लेने की सलाह दी है ।

समझौता बिन शर्तों पर ? किससे ? अभी हमारे घाव हरे हैं उनकी शोट का दद हमें भूना नहीं, न उस शहीद की शहादत की याद ही भूती है जिसके मजार पर आज भी हजारों दीवान सिद्धा करने हर साल जाते हैं । उस माल में भी वहाँ गया था बाराभूमा के त्रियेदियर उस्मान के उस मजार पर, जिसकी शपथ प्रत्येक दानवत भारतीय की भारतीयता की शपथ हागी । त्रियेदियर उस्मान आजमगढ़ का साल था हमारे बनारस में बलिया में सग दिन आजमगढ़ का, जिनसे दग की आचलिकना की हर्दे ताइ समूचे भारत की एकता के लिए वही जवाँमर्शी से कश्मीर की हिन्दू मुसलमान सतियों को रणा के लिए—मथ सतियों की हिन्दू-मुसलमान जात नहीं हुआ करता—घरनी जान कुर्बान कर दी थी । उस पाकिस्तानी वामिजाजी को नशा कौन हिन्दुस्तानी भूल सकता है ? इस हिन्दुस्तान के ऊपर हुए पुराने हमसों में मध्य एशियाई सृटेरे कभी झोक लिये जात थे वस ही कबीलाई पठानों

को गुमराह कर उन्हें कश्मीर की परियों घौर धीनगर के घन का सामना दे पाकिस्तानी जगबाब कश्मीर की घाटी में उतार लाये थे। गुलमर्ग के हरे भरे फूलों के मैदान में खड़े सबड़ी के मकानों को मैंने उस हमसे क कई साल बाद देखा था जो तब भी अपनी जमी काया लिये बहुती इन्तान के कासे कारनामों का इजहार कर रहे थे। पठानों को तय करने के लिए कुछ पांच मील धीनगर की राह बच रही थी जब हिन्दुस्तान के अवालों ने पासा पसट दिया था और दुश्मन जलटे पांच सौट गये थे।

श्री प्रताप कामेश के पञ्जाबी के प्रोफेसर सरदार सेवासिंह राह के उस गाँव के थे जिसने अपनी घाड़ से पठानों के अल्पे घाते-घाते दखे थे। उन्होंने घाशों देखा वयान मुझे सुनाया था। पठानिस्तान के सबास का दवा देने का खरिया पाकिस्तान के लिए तब शायद कोई घौर न था।

सरदार सेवासिंह की याद और दोस्तों की भी याद दिसाती है। कश्मीरी के प्रसिद्ध कवि नादिर को एक खमाने से जानता था। जैसे ही सिकारे से मेमम भाव 'बंड' से उतर जवाहरनगर को बना वे मिस गये थे और सारों बाद निघने पर भी एक दूसरे पर भटकती नजर डाल कर भी हम एक-दूसरे को पहचानने से न चूके थे।

शशि शेरर सोयखानी हरकृष्ण कौल के साथ पहले भी मिल चुके थे इतनाक से केवल एक बार उस पिछली राठ को जिसकी घगसी सुबह कश्मीर के अपने दूसरे प्रवास से मैं सौट आया था। उनके मित्र, मेरे भी रतनसाल खान्त पहली बार

मुझे उस व्याख्याम में मिले थे जिसका प्रबंध श्री चमनसाल सपरू ने किया था और जिसकी सदारत श्री प्रताप कामेज के प्रिंसिपल सफ़ुद्दीन साहब ने की थी ।

भेसम की मणिम धाराओं से जैसे श्रीनगर पोर-पोर बिधा हुआ है । कश्मीर की समूची घाटी पन्ने के रसते स्रोतों से इध-इध सिंच रही है और प्रकृति का इस सुपमा को मानवीय परब्र ने आस्तर बना दिया है—अफ़सोस काश्मीर की मान शीयता ने नहीं, गंगा-अमुना की मानवीयता ने जिसमें सदा कश्मीर को अपने समझा है, सदा उस अपने माथ की मणि बनाकर रखा है ।

देवता हूँ हादियों की, धोड़ों की, पालकियों की उन सुनहरी-सपहसी कठारों को, अब मुग़लों का वैभव फ़रगना के सपनों को भूख पोर पंजाल को साथ उस खुशनुमा घाटी में उतर जाता था । उनके प्रशासक हाथों ने कश्मीर की प्रकृति का सोमह सिंगार किया—शासीमार, मिखाठ, चरमाछाही, अछबस भेसम का निकास घेरोनाग, एक के बाद एक जादू की सक्की से जैसे उनके हाथों उमरते-सवरते आये । अकबर जहाँगीर, शाहजहाँ कश्मीर में रम गये थे । नूरजहाँ कश्मीरी प्रकृति के देवमन्दिर की घमर पुमारिन बनी और समूची घाटी अकबर के अगाध चिनारों से, सफ़ुदों से उमग चठी । मैदानों में चिनार सप्तपर्णी छायातह और राजमार्गों के दानों और पतले छरहरे ऊँचे सफ़ुदे जिनके घिबर को पतली-सम्वी छड़ी की-सी डालियाँ नोड़वत् टक लती हैं ।

सफ़ुदे ऊँचे होकर भी चिनारों के सामने जैसे उताने लगते

है सही सड़ों के-से बनाने जो बम्सुत धाज कश्मीर के भी प्रतीक बन गये हैं। उस कश्मीर की याद, उससे दूर हो धाज सपने की-सी लगती है फिर बाद ऐसी जो उमड़-पुसड़ मन में उठती है उन मित्रों की ही तरह जो सौभ को घना यास घुमकर, बककर सौटे मेरी सोहबत में पद लमहे गुबारने वसे धाते थे।

गोनदों ने जिसे पूजा करकोटकों ने जिसे सवारा, उत्पनों सोहर्गों, साहियों ने जिसे शक्ति समंभित किया ससिताविस्व मे जिसकी समस्त उतरो सामा पर बिजयमनम्न निर्मित किए। उस पवित्र भूमि का कौन हाव लगा सकता है? इसवर्ती वह सौन्दर्यों की परम्परा, एशिया को साभिसाल मोठे पानी की वह झील वृसर जिसमें इडसाकर लाकर मेसम फिर निकल पड़ती है अपना सपिस राह से सेतो है जहाँ शकर बर्मन का पाटन सूर्य का सोपुर (अहाँ क प्राधान निवासी यहाँ के कश्मीरी बुद्ध कर अपना नाम शिवपुरी मिलने लग है!) कनिष्क का कानिष्कपुर, हृदिष्क का भुस्कपुर, सस्त्रुति के पहलए धाज भी जाग रहे हैं।

कश्मीर-सम्बन्धी भारतीय सकट उसके धमर साहित्यकारों की देवछामा को जैसे भूर रहा हो धाज दुवमन की घौस मेसम की घाटी पर लगी है उसकी केशर की बयारियों पर। पर कश्मीर ने धाज केशर तन पर धारण किया है परिघा के रूप में कसरियावाना, जो ससिदान का परिधान है और जिसकी सौलष का वह निश्चय अपने सकट को लीप जायेगा।

पाकिस्तानी शोले और कु कुम की प्रतिरक्षा

कश्यप ने ८० मीस मम्बी २५ मीस चौड़ी पवनों से घिरी कश्मीरी मीस को सुझाकर घानों के सेत, फलों के बाग और पाम्पुर (पद्मपुर) में कीमती केसर के फूल उगाये। शान्तिमेवी, देखने में काफ़ी कमजोर कश्मीरी जाति ने वहाँ डेरा डाला जहाँ प्रकृति ने दाना हाथों मुघराई के फूल बरसाये थे। एशिया की सारी जातियाँ पामीरो के पीछे की समूची दुनिया—चीनी तुर्किस्तान से खुरासान—ईरान तक—कश्मीरी खूबसूरती की कसम खाती थी समरकन्द और बुखारा के कारांगर कश्मीरी कारीगरों के हाथ चूमते थे कश्मीरी नार मध्य एशिया की कहानियों में परियों का आवरण पाती थी।

पाम्पुर के मैदानों में केसर फूलता था आज भी फूलता है। कश्मीरी आस्थानों में उसकी कहानी बार-बार कही गयी है। तपक नाग भाँसों की पीर से बेहाम प्रसिद्ध वध बाग्मट्ट के पास पहुँचा। हुकूम ने हज़ार हिकमत की पर काम एक न भायी, और नाग सड़पता रहा। बाग्मट्ट ने उसका भेद जान लिया—नाग के मुँह से जो अहूर की भाप बराबर निकसती रहती थी वह दवा के घसर को मुलस देती थी, हर दवा बेकार हो

घाती थी। बाग्मट्ट ने पहले नाग का मुह बांधा फिर दवा सगाकर घाँसे बाँध दीं, फिर मुह का बंधन खोल दिया। उपर्युक्त नागराज ने वद्यराज को फूस की एक कमीची कुकुम का बीज, जिसे बाग्मट्ट ने जमीन में डाल दिया। वद्य के पास किसान की क्षमता नहीं थी जो पौध को सीजता उसे खाद देता ? पर बीज का असर उसने कुछ ही सप्ताहों बाद देखा जब उसके निवास पद्मपुर के खेतों में केसर के पौधों का सागर सहारा उठा—खाल नारंगी रेशों से भरा वैजनी सागर—जिसे जिसने देखा मुग्ध हो गया और जो आज 'कश्मीरजन्मा' कुकुम भेसम की उस घाटी कश्मीर का पर्याय बन गया है। अरबों ने कश्मीर की केसर की पौध पश्चिम में सगायी, दसवीं सदी में स्पेन तक में वह पौध फूली, और कहते हैं १८वीं सदी तक इससे डेढ़ तक में अरबों के पास, उसके फूस उगाये और लोड़े जाते रहे।

कश्मीरजन्मा कुकुम कश्मीर में भी पौध-पौध फूला पौध पौध सोड़ा गया। अदुसफ़्तस के कहने के मुताबिक पाम्पुर की दस-दस बारह-बारह हजार एकड़ जमीन मुगलों के समय केसर से डक बनाया करती थी। जिन्होंने कश्मीर को विनाश दिये सफेदे दिये बाघोबहार दिये और इस खरिये फ़रसना-बदशाहों के सपने टूट जाने पर उनको कश्मीरी जमीन पर सवेह उतार कर रखा उन्हीं मुगलों से—शहशाह भकवर से। बीरबस ने कहते हैं पाम्पुर की केसरिया जमीन मांगकर उन्हें शक्ति कर दिया। शहशाह ने पूछा अब क्या वें बीरबस ? गाँव नगर बहुत दे चुका हाथी घोड़ों की भकवर

क 'नवरत्नों' के नग राजा वीरवल को कमी नहीं फिर मांगो वीरवल तुम्हीं कुछ ऐसा मांगो, कि देकर निहास हा जाऊं । और वीरवल न मांगी भार बीधा जमान । सारा दरवार हुन पडा पर अकबर विहसकर नी हवा नहीं । उसन जाना कि नवरत्नों का मग अपनी कीमत की चीज मांग रहा हागा । उसन फिर पूछा—कहाँ ? वीरवल न भेदभरी मुस्कान क साथ जवाब दिया—पाम्पुर में । और पाम्पुर क आसफानी खेत उसे देकर अकबर ने वेन को साथ मिटा ली ।

पाम्पुर के केसर के खेतों पर घाग बरसन को हुई । वदरता और कन ही क्या सकती है ? दोनों और स उसन जतन किये, मुजफ्फरानाद—बारासूसा की और स गिलगित की और से । और अगर भारतीय सना वहाँ स पहुच जाती तो पाम्पुर के इन खेतों पर भा घाज घाग बरसती होती जैसे बारासूसा और पट्टन की सलनाओं के सलाट के कुकुम पर कमी बरसी थी ।

मुजफ्फरानाद की और स पाकिस्तानी पठानों ने जब हमसा किया तब गिलगित में नी एक घटना घटी । कश्मीर के महाराजा हरिसिंह न १९३५ में ब्रिटिश सरकार को ६० लाख क लिए गिलगित का पट्टे में मिल दिया था । पर सन् ४७ में समूह हिन्दुस्तान का तरह कश्मीर भी आशा हो गया । पट्टा अपने-आपे कानूनन टूट जान स कश्मीर क दरवार न मान क लिए गिलगित एक गवर्नर भेजा । मेजर ब्राउन और उसका जमात का उकसाकर पाकिस्तान न उनसे बगावत करा दी और कश्मीरी दरबार के गवर्नर का क्रम में हसदा दिया । साथ ही समूह गिलगित पर कब्जा भी कर लिया, जिससे

अफ़ग़ानिस्तान और रूस का पड़ोस भी भारत की घाँसों से प्रोच्छन्न हो गया ।

उधर वारामुसा की राह गाँवों-मगरों को छूटते-जमाते पाकिस्तानी हथियारों से सँस, उनकी फ़ौजी गाड़ियाँ पर सवे, पठान ध्योनगर से पाँच मील के भीतर आ पहुँचे । शान्तिप्रिय देश अम्न का आन मानने वाले कश्मीरी जो अब तक कराह रहे थे थुप बठे न रह सके । कश्मीर का मात्र राजनीतिक वल 'नेशनल काँग्रेस' जो पिछले पन्द्रह सालों से देश को अजानता को अग्रा रहा था मदान में उतर आया । हिन्दू-मुसलमान में कोई भेद न रहा और उसने दोनों की इकट्ठी राष्ट्रिय फ़ौज सड़ी की । उधर अक्टूबर में उसने मजबूर किया कि माउण्टबटेन के एमान के मुठाबिक रियासत के राजा हरीसिंह तत्काल उड़कर दिल्ली जाएँ और अपनी रियासत को भारत के प्रजातंत्र में मिसा दें । महाराज हरीसिंह तत्काल उड़ और उन्होंने दिल्ली में ब्रिटिश एमान के मुठाबिक कश्मीर को भारत को अलग करते हुए 'इन्स्ट्रुमेंट ऑफ़ ऐक्सेशन' पर हस्ताक्षर कर दिये और कश्मीर बामुनी तौर पर भारत का अंग बन गया जैसे असात पाकिस्तान का अंग बन गया था । भारत अपने राजनीतिक अरीर के नयाग—कश्मीर को अचाने के लिए बुइसअस्य कसअ्यास्य हुधा और उसकी सेनाएँ श्रीनगर के द्वार पर 'नेशनल काँग्रेस' की नेशनल मिसीशिया के साथ जा बटी । मन्वन टाइम्स' के सवादाता ने लिखा—ध्योनगर अघुओं से कुछ चार मील दूर रह गया है, सब कुछ अनावटी लगता है अयता है कि यह हमसा अजा और दूर है पर कश्मीर

की रक्षा के लिए जा जाओं लड़प रही हैं उनका क्या होगा ? बेसब, इगारा नेसनस मिलीशिया के प्रबानों की घोर या, जो अपनी जान हथेली पर लिये थीनगर-बारामूसा की घोर से पहुचनेवाले नाकों पर लड़ थे एथेन्स की रक्षा में ईरानी सम्राट बरकसीर की राह रोक अस कभी स्पार्ता के वीर लड़ हुए थे । उन्हीं नाकों पर मुहम्मद मकबूस शरखानी और मास्टर प्रभुस अजीब जूझ मये थे घोर प्रव भारतीय सेना का प्रप्रसिम सिपहसासार उस्मान जूझा । पर पाकिस्तानी प्रौबों की राह कश्मीर में रुक गयी । सुटेरा को बिघर राह मिमी उषर के भाग । राह एक ही थी, अपना ही मूट उबाड़े जनाये गाँवो का, बारामूसा की राह, पाकिस्तान की शार ।

कसर के खेत बच गये हुनर की उबकती हुई दुनिया बच गयी, कैनून धावीदान की इस्सत घोर याद बच गयी, भारत का कश्मीर बच गया । फागसी कुलाम है, इन कसर के खेतों के निम्बत—आफाने बीदा बायद राठे हिन्दुस्तान गिरिफ्त—कसर के फूल जब पकठे विलन लगे तब हिन्दुस्तान की राह से । तब मन्वियों का घासन होता है और बफ बरसात घास-मान के नीचे मुसाफिरों को सम्हाल पाम्पुर में सम्भक नहीं, जिसस यह कहाकत घसा पर घटी उन पर जा न उनके घासिक ब, न सीदापर, न उनकी सुवमुरती निहारन वाले मुसाफिर । पर वे लौटे कश्मीरी कसर की घास छोड़, जब हिन्दुस्तानी प्रौबे उनका पीठ पर जा पहुँची ।

नेसनस काफेस कश्मीरी जनता की स्वीकृत राजनीतिक पार्टी थी । मुयसों प्रअगानों, सिबकों, डोगरासे लोपिठ कश्मीरी

जनता ने पहली बार उसमें अपना प्रतिनिधान पाया था। नेशनल काँग्रेस ने व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक अधिकारों की माँग की और उसकी माँग को भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने सराहा, महात्मा गांधी अयुलकसाम घाषाब बल्लभभाई पटेल, जवाहरलाल नेहरू ने कश्मीरी आशाओं को अपने आशीर्वाद से मूर्तिमान किया। जब कश्मीरी दरबार का नेशनल काँग्रेस ने अपने 'कश्मीर छोड़ो' आन्दोलन से सामना किया तब दरबार ने तो उसे कुबस डालने के उपक्रम किये ही पाकिस्तान के ज़ायदे-आज़म मुहम्मदअली जिन्ना ने उस आन्दोलन का 'कामून और व्यवस्था छोड़नेवासे सुटेरों की वद भमनी' कहा पर पंडित नेहरू ने अपने कश्मीर प्रवेश पर नियेध होने पर भी काँग्रेस की मदद के लिए प्रवेश का सत्याग्रह किया और पकड़े गये। इस तरह कश्मीरी नेशनल काँग्रेस का बहु आन्दोलन भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के स्वतंत्रता अभियान का ही एक दामन था पर उसकी हकीकत की वेशक मुसलिम सींग ज़ायस न थी। नेशनल काँग्रेस ने अपने दोस्त और दुश्मन को पहचाना अपने आबरू और अस्मत् के बचानेवालों को पहचाना और अगले ही साल सन् ४८ के अक्टूबर में कश्मीर को भारत का अमिन् अग और कश्मीर के भारतीय जनतंत्र में प्रवेश को पूणत संपन्न ऐसान किया।

बस्तुतः यही समुचित सर्वैधानिक प्रक्रिया थी। पाकिस्तान की आसी अवसरवादी नीति का जवाब न हो जनमत है न राष्ट्रसभ का निणय—उसका जवाब यस यही है कि ब्रिटिश सरकार की जोपणा के अनुसार देशी राज्यों के प्रमुओं को जो

अधिकार प्राप्त या उसी अधिकार से कश्मीर के राजा हरीसिंह ने अपने राज्य को पाकिस्तान में पाकिस्तानी राज्यों की तरह भारत में भारतीय राज्यों की तरह अपनी इच्छा से, अपनी प्रजा कश्मीरियों की पाकिस्तानी लुटेरों की लूट बमाल्कार, अग्निकाण्ड की बर्बरता से रक्षा के लिए भारत के अन्तर्गत कर दिया, जिस अवधिगतिक और कानूनी क्रिया का समयन शीघ्र ही बाद कश्मीरी जनमत से निर्वाचित कश्मीर की विधानसभा न उसक नेशनल काँग्रेस में अपनी घोषणा द्वारा सपुष्ट कर दिया। और अब भारत अपने उस राज्य की रक्षा के लिए अपना धन-जन उसकी स्वतंत्रता की वेदी पर उसक रक्षा-कार्य में न्योछावर कर देगा।

पर बात तो केसर की थी कश्मीरी कूकुम की। केसर जल्दी मरती नहीं जल्दी उगती भी नहीं। आठ साल बमीन बनायी जाती है घोने के तीन साल बाद उसमें प्रसुप्त फूलों हैं जोदह साल—राम के वनवास जैसी तप की अवधि तक—जीवित बनी रहती है। और इस बीच उसे न तो साद की अकुरत होती है न सिपाई की। बगर गर्मी की सपट से भुससे, बगर घाती हुई बर्फ की चोट से मरे हिम घातप दोनों से ऊपर उठ, पीप-पीप फूलों से भर जाती है और फूलों का वैजनी समुन्दर पाम्पुर के खेतों पर लहरा उठता है। यह साल केसर के वैजनी फूलों का समुन्दर सचमुच कभी दुश्मन के ठेके घाग के घासों से भुलसने का नहीं।

पाकिस्तानी हमला और कश्मीरी अग्नेज

सन् १९४७ के गिलगित के मेजर छाउन के विद्रोह और पाकिस्तान के उस विद्रोह से साम उठाने पर प्रतिकार कर लेने की जो घटना इस देश में बार-बार कही और सुनी गई थी उसने अग्नेजों की कूटनीति के खिलाफ मौजवानों में एक तूफान उठा दिया था। अग्नेजों के विरुद्ध तब भारतीयों की सीधे प्रतिक्रिया स्वभाविक थी। पर ठीक तभी उसी कश्मीर में कुछ यूरोपियनों ने जिस घोरज के साथ पाकिस्तानी क्वींसार्ड सुटेरों के हमले का सामना किया और अपनी बीरता द्वारा कश्मीरी साज की तन रहते रक्षा की थी, वह कहानी यद्यपि यूरोप और अमेरिका में महोनों कही-सुनी जाती रही थी भारत में बिनकही ही रह गई थी।

कश्मीर की उस दिल हिंसा बेनेवामी सोमहर्षक कहानी को कश्मीरियों से ही सुनकर अभी वहां से लौटा हूँ और यद्यपि उसे पास के मित्रों से बार-बार कहा है उसे कश्मीरी दोस्तों से मिहूर सिहूर सुना था उसे लिख डालने का खोम भी संवरण न कर सकूंगा।

वास्तविकता यह है सन् १९४७ की, भारत के विभाजन के

समय की अब दस मजहबों के कठमुस्लों के कारनामों का शिकार, महसुहान हाँ रखा था और पजाब तथा बंगाल खून की हीमी खेल रहे थे। पाकिस्तान ने सोचा बल्लो लगे हाथ कश्मीर को भी हृदय से और उसने स्वातंत्र्य के कबीलाई पठानों को अपने साधन का प्रयत्न बनाया। और उनकी भाग कश्मीर के रणविरगें घालों-फिरन पर फेंकने के पहले उसने कश्मीर को जबर कर लेना मुनासिब समझा।

कश्मीर में कैमम की राह पाकिस्तान या यों कहिए कि अविभाजित भारत से उन धरन के लिए अनिवाय अनेक चीजें आया करती थीं—पेट्रोल गहू नमक, मिट्टी का तेल कपड़ा समी। पाकिस्तान ने इनका भेजना बन्द कर कश्मीर का ब्लाकड पूरा कर दिया। कश्मीर रोज के इन्तमाल की चीजों के अभाव से परेगान हाँ उठा, मुसीबत पर मुमोवत भेसने लगा।

और तभी पाकिस्तान ने उस पर गहरा धार किया। अपनी जमान पर क़वालाई इलाका के पठानों का सा खडा किया। कश्मी मध्य एशिया की गुमराह और सूट और सडू के नाम पर दौड़ पठनवासी जातियाँ उस मजहब के मूढ़ के नीचे लड़ो कर ली जाती थी वस ही ये खुनी खानाबदोस जातियाँ अपने मिट्टा के काटो से, पहाड़ी डालों से भूसी नगी, पाकिस्तान को बरगलाई गून की प्यामी बन्दूकें मियकश्मीरी हूरोँ और कीमती घस्नुषा के लाभ से कश्मीर की मामा पर सा लड़ी की गई।

तीन सितंबर का तीन मौ वसीगी कश्मीर की और अपने निम्नान अपने सहा करन नामों-बन्दूकों से लड़ हो बने। साँया

के पास छिपकर उन्होंने एक कश्मीरी को मार डाला । तभी जम्मू पर हमला हुआ जम्मू प्रान्त के रणवीर सिंहपुरा से बारह मील दक्खिन-पूरब दोहासी नाम के गांव पर । पार सौ पाकिस्तानियों ने जानसेबा हथियारों के साथ गांव पर हमला किया निहत्थों को मार डाला घरों को बसा दिया ।

धीरे तब २० फरवरी १९४७ को ठीक उस दिन से पन्द्रह घण्टे पहले जिस दिन चीनियों ने नेफा पर हमला किया था पाकिस्तानी कबीसाई पठानों ने जो अब तक मजहब और खूट के नाम पर झूठे किए जाते रहे वे मुजफ्फराबाद की कश्मीरी सरहद पर हमला किया । यह हमला कई राहों से हुआ मुजफ्फराबाद की राह उनमें प्रधान थी । पठानों के हाथ पाकिस्तान द्वारा दिए हथियारों—ब्रेमगनों, स्टेनगनों गोसे-तोपों होवित्सरों-टेकमार बंदूकों जमीनी माइनों—से भरे थे । हमला सुनी हुआ और अब-अब जहां-जहां पठानों में व्यवस्था बिगड़ी सही पाकिस्तानी फौजों ने उनकी जगह से सी ।

मुजफ्फराबाद के बाव दोमेल की बारी आई, फिर उरी की बारामुसा फिर पट्टन की । और अब दूसरे जाते समय बस के ड्राइवर ने उरी बारामुसा और पट्टन की घोर हत्या किया तब घासों जैसे वरस पड़ने को हो आई । बारामुसा में ही सुनी पठानों की राह रोकते हुए मेरा पड़ोसी आजमगढ़ का बिगेबियर उस्मान कश्मीर की साथ रखने के लिए खहीद हुआ था और पट्टन की याद ने तो कश्मीर का इतिहास ही छन क रोम रोम में जगा दिया—कश्मीर के प्रसिद्ध विजेता संकरवर्मन् की राजधानी रहा था यह पट्टन जहां बड़ी ही दूर पर सुसम वसर

में समाकर फिर निकल पड़ती है और उसी पट्टन को हमसा-वरों ने कुत्सेग्राम द्वारा तमवार के घाट उतार दिया। इन सारे अभिकूट नगरों की कहानी तब सूट की थी, हत्या, बसात्कार यात्रणा की। हमसावर श्रीनगर के पास तक पहुंच गए और उसे और दूसरे कश्मीरी नगरों को विजसी पहुंचाने वाले महोरा के हाइड्रो-एलेक्ट्रिक स्टेसन का नाम कर डाला। घास-पास के नगर भग्नकार में विसीन हो गए।

राह के गांव-नगर बिगेड और तमूर की याद दिसाने लगे उनके घले, लड़े भग्नखंडे मकान पठानों की गई राह बताने लगे। ग्राह्तों के चोत्कार, यत्रितों की कराह, बसात्कृतों की पुकार सूट और हत्याओं की हुकार उपुर-जनपद जब धात्रान्त हो गए सभी बहु घटना घटी जिसका जवाब इन्कफ भी नहीं है पर जिसको प्रतिकारी हथियारबन्द सिपाहियों ने नहीं बन्द यूरोपीय पादरियों ने, निहम्पे पुरुषों और स्त्रियों न ईसा के बन्दों ने, घटाया था।

बारामूला में सन्त जीबेक का कब्जेट था। पठानों में उस पर हमसा किया। शान्ति की रक्षा के लिए, अपने से पहले उस दानवीयता का शिकार न होने देने के लिए, भग्ने और वृद्ध पादरी एक के बाद एक सामने आते गए, तलवार और बंदूक के घाट उतरते गए। इयादे-भाजम के मजहब के बन्दों में जो 'भस्वसाम' शान्ति के नारों से एक-दूसरे का स्वागत करते हैं, उन भगवान के प्ररिस्तों का ईमान के लिए हसास कर दिया।

सन्दन के 'बेसी एक्सप्रेस' के सबाददाता सिडनी स्मिथ से

उस क्वॉट के निवासी फ़ादर जार्ज सक्स ने अपनी घाँसों-बेकी घटना का बयान किया—पठानों ने पाकिस्तानी हमलावरों ने अस्यताम के रोगियों के बार्ड पर हमला किया और उन पर बेतहाशा गोली बरसाने लग।

एक मुस्लिम महिला ने अभी-अभी बच्चा जन्मा था। हमला-वर उस पर सपक। बीस साल की जवान नर्स ने अपना जिस्म उसकी रक्षा में प्रागे कर दिया। भगवान बचाए बसाना पड़े कि उस शहीद का क्या हुआ। पहले वह गोली से मार दी गई बाद को फिर ज़ख़ा।

मदर सुपीरियर को जैसे काठ मार गया पर वह वृद्धा अपना कलम्य पासन करन मौत के पगाम के बाबजूद प्रागे बढ़ी। उसने साधों को डकलना चाहा। उस पर हमला कर छूनियों ने उसे भूट लिया। फिर जब सहयोगी मदर' न देखा कि एक पठान मर्दर सुपीरियर को मारने के लिए यदूक उठा चुका है तब वह दीडी और क्षण भर में उसके सामने घा गई। गाली उसके विस के पार हो गई और वह साधा के ऊपर सुड़क गई। मदर सुपीरियर अभी जित्ना थी उसने रक्षा का प्रयत्न करनेवामो सहकारिणी को घन्यवाद देने के लिए मुह जोसा हो या कि सुगोन और गोला दोनों ने उसका भन्त कर दिया।

ब्रिटिश क्रौम का रिटायर्ड बनल डाइरम विधाम के लिए वहीं ठहरा हुआ था। जब उससे यह अनध न देखा गया तब उसकी सनिक वृत्ति आगी पर कबल हमके कि वह कुछ कर सके कबोसाइया ने उसे पकड़ लिया और उसका जिस्म गोसियों

से छेद दिया। पत्नी मिखल डाइक्स पति की मदद के लिए दौड़ी, गोलियों का शिकार हो गई।

'न्यूयार्क टाइम्स' के संवाददाता राबर्ट ट्रवस ने १० नवंबर, १९४७ को वारामुसा से लिखा कि कविताई भय से भागने से पहले नगर का घन पूरम्पूर लूट चुके थे, एक-एक युवती छीन चुके थे। सिकागो डेली टिम्पून को भेजे अपने 'विस्पैश' में असाविएटोड प्रेस के फोटोग्राफर ने लिखा—'कम से कम बीस गांवों को घुम्राघार जसते मैंने अपनी घासों देखा है गांव, जिन्हें मुस्लिम हमलावरों ने अग्निसात कर दिया था।

कश्मीर अपने गांवों को सहसाकर फिर सड़ा हो गया, पर उन गांवों से उसे बचा रखने के लिए इसाई अस्ताह क उन यूरोपीय बन्दा न वारामुसा को जमोन पर जानें दे दीं। कश्मीर चाहे अपने गांवों को मूल जाए पर अपने इन रक्षकों को न भूस पाएगा। कश्मीर के लिए अभी कितनी कुरबानियां भीर करनी होंगी? पर क्या कोई कुरबानी उसके लिए काफी हो सकती है?

दिग्विजयी ललितादित्य और कश्मीर की सीमा

जैसे आज भारत की उत्तरी सीमा कश्मीर पर दो-बो घोर से सकट के बादल उमड़ उठ हैं वही पहले भी इस देश को उनका सामना करना पड़ा था और अपने सकट के मेघों को भेद वह सूर्य का भाँति फिर चमक उठा था। आज के सकट में इतिहास के उस पुराने सकट और उसके सफल प्रतिकार की कहानी की याद प्राकृतिक है।

सातवीं सदी ईस्वी के अन्त की बात है घाठवी के शुरू की जब कश्मीर की सीमा पर पूरब में तिब्बती भोटिये मंडरा रहे थे, उत्तर में चीन बढ़ा आ रहा था पश्चिम में अरबों के रिसासे काबुल की घाटी पर आस गढ़ाये हिन्दूकुश के चतार पर बदस्ता तक फैले उसके वामन को सींच-सरोंच रहे थे और कश्मीर अपनी स्वतन्त्र स्थिति के प्रति शक्ति हो उठा था। कारण कि कश्मीर सब समूच भारत का मस्तक न था अङ्ग न था भारत तब भारत भी न था। उसके तब घनेक अङ्ग थे सब एक-दूसरे से स्वतन्त्र यद्यपि एक-दूसरे की मदद करने से वे कभी चुकते न थे।

काबुल पर उन शाहिमों का शासन था जिन्हें कभी

समुद्रगुप्त ने देश से बाहर निकास दिया था पर जो क्षत्रिय कर्तव्य में दक्ष हिन्दूकुल की ऊचाइयों पर खड़े देश के पहलूये बने थे और जो एक धार ईरानी और मध्य-एशियाई धरवों की बोट सीन पर भेज रहे थे दूसरी धोर सिन्धी धरवों के तेवर से शक्ति थे । तभी चीनी सम्राट ने कृष्ण सुत्तन, खुग सान पर अधिकार कर लिया फिर धीरे-धीरे बालतिस्तान नी उसके पारों में जा गिरा । कश्मीर के राजाओं के कान लड़े हुए क्योंकि यह प्राचिरी धार उनकी सरहद पर था काराकोरम की पक्षमासा तक । घटनाओं के अत्र असे क्रियाए प्रति क्रियाए राजनीति के क्षेत्र में हुई और अभी कश्मकण जारी ही थी कि वाप का बेटा ससितादित्य मुक्तापीड दो भाइयों के बाद कश्मीर की गद्दी पर बैठा ।

ससितादित्य मुक्तापीड का शासनकाल कश्मीर के इतिहास का प्रकाशविन्दु है । कश्मीरी इतिहासकार कन्हूण ने अपनी राजतरंगिणी के चौथे सर्ग में इस दिग्विजयी नृपति की चर्चा प्रायः ढाई सौ श्लोकों (१२१-३७१) में बड़े मनोयोग से की है । ससितादित्य धीरे धीरे, मनम्यो धीरे, नगर और बास्तु-निर्माता था । कश्मीर को डोबाठाल राजनीति उसकी चिन्ता का विषय बनी और उसी के अनुरूप उसमें महत्वाकांक्षा का काम हुआ । कन्हूण निश्चय है कि नदियों का ध्यय समुद्र होने से उनकी धारा की सीमा हानो है पर महत्वाकांक्षी जनों के मनोरथों की कोई सीमा नहीं होती और ससितादित्य की दिग्विजयिनी प्राकांक्षा की भी कोई सीमा नहीं थी ।

पर बास्तुबिम्बता तो यह थी कि ससितादित्य अपनी

सीमाओं की रक्षा का साधन-मात्र अपनी महत्वाकांक्षा को बनाना चाहता था और उसने सोचा कि जब तक शत्रुओं के राज्य सीमा तक के स्वतंत्र राज्यों पर अधिकार न कर सिया जाएगा कश्मीर का सङ्घटन तक बना ही रहेगा। इससे उसने अपनी विजयों को एक योजना तयार की।

उसी के राज्य कश्मीर के कभी के स्वामी कनिष्क का सङ्घटन उसका ध्यान न था। कनिष्क ने काबुल और घामू दरिया की घाटियों के साथ ही कश्मीर की घाटी को भी अपने साम्राज्य का अन्तर्ग बनाये रखा और कश्मीर के सबंध में तो उसे चीन से कितनी ही सङ्गाहियां मङ्गनी पड़ीं। अन्त में जब चीनी सम्राट् के करव चीनी उपराज्यों पर अपनी प्रभुता प्रतिष्ठित कर उनके राजपुत्रों को पंजाब और पेशावर में अमावस के तीर पर छोड़ कर उसने रक्षा सभी कश्मीर का वह चीनी सङ्घटन टस सका। समितादित्य के पड़ोसी हिन्दुकुश के शाहिय राजा फिर भी अरबों से उसके वामपाश्व और पश्चिमी सीमा की अपनी रक्षा द्वारा स्वाभाविक ही रक्षा कर रहे थे। उसे भङ्गना चीन और तिब्बत से था और उत्तर के उन मध्य-एशियाई राष्ट्रों से जिनके चीनी अथवा अरबी दोनों प्रसरणीतियों द्वारा अकालकवसित हो जाने का डर था। पर उन प्रबल शत्रुओं से भङ्गने के पहले यह आवश्यक था कि वह अपनी पीठ के सम्भावित शत्रुओं को अमात्रान्त कर ले। कश्मीर वज्ज्रास और आसाम के राजाओं को अपनी प्रभुता से विभक्त मित्र बना उसने उत्तर की ओर रुख किया।

सबसे प्रबल समबल चीन से भी प्रबल तब तिब्बत था

जिससे चीन की भी धकसर मूठमेहें हो जाया करती थीं । महात्त के लिए कश्मीर धीर मोट यानी तिब्बत में युद्ध ता घाये दिन ही जाया करत थे । इन प्रबल दानुष्यों को पूरव धीर उत्तर-पूरव छोड़ ललितादित्य ने पहले उत्तर-पदिचम की धीर रुद्ध किया, इस अथ कि प्रबलतम दानु से माहा सेत समम अपनी सारी विजिज्ज दमित उस मासों पर मकेंद्रित कर दा आ सक ।

पहल यह उत्तर-पदिचम की धीर चला अदधमाधन कम्बोजों की धार आ घोड़ा की नम्में तयार कर बेबा भी करतें थे सफ्त घुड़मवार भी थे । यह अत्यन्त प्राचीन पर उसे पर-परयासिद्ध बात थी कि भारतीय विजेता जब धर स बाहर देखते थे तब पहल दामू या वजु की घाटी की धार, बदकना की धीर ठोक जैसे उस घाटी धीर उसके फरखना-धदकशा से बावर म हिन्दुस्तान का देखा था, फिर उसके हिन्दुस्तानी वंगजों न बार-बार हिन्दुस्तान स उस घाटी को जीतने के सपन देख थ । बहुत पहले कभी रथु ने उम घाटी स सौटते हुए कम्बोजों के अखरोटों भरे दग को जीता था । ललितादित्य ने भी पहल उमो देग की धार रुद्ध किया धीर कम्हूप लिल्लता है भागे हुए कम्बोजों क कारण घुड़सासों के खाला हो जाने से उन पर अयकार का कासापन आ छाया सो सगता था उस भेसों ने उन पर आक्रमण कर दिया ही ।

उहें बाद ललितादित्य तुखारिस्तान की धीर बड़ा ता तुखारी उसक विज्जम स अपहृत अपने मांन-नगर छोड़ पवत की घाटियों पर उनकी कन्दराओं में आ छिपे । इस प्रकार जब

मध्य एशिया के अनेक राज्यों को जीत सलित्तादित्य पुरव की ओर बढ़ा तब दरदों को उसने कुचस भासा क्माकि उसके राज्य के पहले पड़ोसी होने के कारण वे उसके स्वाभाविक शत्रु थे । उनसे निपटकर उसने दम लिया क्योंकि अब शत्रु को रह गये थे चीन और भोट (तिब्बत) । उसने पहले लाहे को सोहे से काटना निश्चित कर भेद से काम लेने का सकल्प किया ।

चीनी इतिहास स सिद्ध है कि मो-ता-पी (मुक्तापीड) ने पहले चीन को अपना दूत उ-सि-ता-मेना । उसके दूत न नित्य उससे जाते तांग राजवंश के सम्राट को समझाया कि अरबों और तुर्कों का हमसा चीन पर शीघ्र ही होनेवासा है और अगर वह हमसा हुआ तो तिब्बत का कांटा घगस में गहरा गड़ दिस को छेद देगा । प्रच्छा हो हम दोनों मिलकर उस तिब्बत के कांटे को उखाड दें । उसके दूत न यह भी कहा कि तिब्बत जानवामे मध्य एशिया के पाँचों रास्ते मुक्तापीड ने बन्द कर दिये हैं और अब आवश्यक्ता है वो सास चीनी सेना की मदद की जिसे हम अपने तरीके से महापघसागर (बुसर) के छट पर तयार कर तिब्बत के विरुद्ध उसका उपयोग करेगे । चीनी सम्राट को तिब्बत क मय से अब यह मन्नूर न हो सका तब तुर्कों के सरदार गान-साह-शान को सलित्तादित्य ने सम्राट के विरुद्ध उभाड़ा और उस चीनी जनरल के घातमय के कारण जो गृहयुद्ध चीन में शुरू हुआ उससे चीनी सम्राट को अपना सिंहासन छोड़ भागना पडा । सलित्तादित्य के लिए अब मदान साफ़ था । दक्षिण और पश्चिम क शत्रुओं से राज्य को निरापद कर उसने तिब्बत से सोहा लेने की ठानी । तिब्बत अब

प्रवेशा हो गया।

सदाख पर बार-बार कश्मीर का अधिकार होता था, पर तिब्बत की कोशिश यही रही थी कि वह उसे कश्मीर से छीन ले। सलितादित्य ने जब अपनी समूची सना के साथ तिब्बत पर आक्रमण किया और मार्च पर मोर्चा बनाता मोर्चा-मार्चा जीतता वह तिब्बत की पश्चिमी सीमा में बहुत गहरा पिल पड़ा। समूचा सदाख उसके अधिकार में तो आ ही गया, सबभन राजधानी साम्राज्य को छोड़ तिब्बत का समूचा पश्चिमी भाग भी कश्मीर के अधिकार में आ गया। सलितादित्य ने इतनी बार मोर्चों को पराम्य किया कि सदाख के सबंध में जब उसे उससे कोई डर न रहा। हिंदुकुश से आये तिब्बत तक फैली हिमालय की बाराबारम की पवतमाला समूची अपनी हो गयी पीछे के पामीरों तक।

सदाख की यह कश्मीर द्वारा विजय कश्मीर के इतिहास में सदा बड़े महत्व की मानी गयी है। बहूषण ने राजधरगिणी में चत्र की द्वितीया को सदाख की जीत का त्योहार कश्मीरियों द्वारा मनाय जाने का उल्लेख किया है। तब तक सलितादित्य की उम सदाख विजय को पूरे चार सौ साल हा चुके थे। यह कश्मीरी राष्ट्रीय त्योहार बहुत पीछे तक कश्मीर में मनाया जाता रहा था। क्या हमारा उस विजय के त्योहार को पुनर्जीवित कर मनाया उचित न होगा ?

तब, जब कश्मीर ने तिब्बत से सदाख जीता था, भारत विविध राज्यों में बटा हुआ था। आज उन सारे राज्यों की सद्गति दक्षिण अफ्रीके के भारते की प्रसन्नता अपनी है। क्या यह

मद (इम्बस्) सहास्र के उत्तरी भाग को सींचता पठानिस्तान की ओर बसा जाता है और जिसके अर्गांग में अपनी तीव्र गति से स्फूर्ति उत्पन्न करने वाली बग्घ्रभागा (चिनाब) सहास्र को पीरती नीचे के भागन में उतर आती है ।

सहास्र—मक्कन का देश—खानू का देश है जिस पुरबी भारत में कामरूप का असम देश है । श्रीनगर की सड़कों पर अक्सर मम्बोसे कद के मद अपनी गृहणियों के साथ बिस्र जाते हैं जिनके सिर पर कानों को ढकनेवासी कमपटी पर उस्ती फेस्ट या लगी रुई की टोपी बिपकी होती है जिस पर सम्बा लबावा होता है नीचे प्रायः घुटनों की ऊंचाई तक के फेस्ट बूट होते हैं—ऐसे नर-नारी जिन पर नजर पड़ते ही उनकी आँखें हँस देती हैं—सहास्री होते हैं । अपने प्रान्त की राजधानी सेह से चौदह रोज प्रायः पैदल चसकर ये श्रीनगर आ पहुँचते हैं, वहाँ अनेक प्रकार की अपनी चीजें बेचते हैं जिनमें, खंवरों के अतिरिक्त वे विभिन्न पत्थर भी होते हैं जिन्हें दिस्सी और बम्बई की शासीन महिस्ताए अपने सौन्दर्य बढ़क असूपणों में जड़वा निहास होती हैं ।

श्रीनगर से बस से चसकर वुनर म्बिल की परिक्रमा कर कश्मीर की राजधानी को छूटने के प्रायः १८ मील पहले पम्बर्स मिलता है । वहीं से उत्तर-पूरव की ओर पुस के पास एक राह फूट गई है । सहास्र जाने वाल वहीँ से बसतम पहुँचते हैं और प्रसिद्ध खोजि-सा का दर्रा पार कर उस सहास्र की भूमि पर पाँव रखते हैं जो ऊंचा पठार होकर मो खासा गर्म है । पहले वास्तिस्तान मिलता है जहाँ के निवासियों के चेहरे

मोहरे प्रायः, सहाय्यी सिबास के वावजूद, कश्मीरियों से मिलते हैं और सहाय्यियों से सवया भिन्न हैं, दरदा, सुन्धारियों, प्रायों की नस्ल । इस यु भाग के प्रधान नगर द्रास से चलकर यात्री पहले करगिल पहुंचते हैं फिर मूसबेक और फिर सिन्धुनद पार कोन्दासे और सेह जो सहाय्य की राजधानी है । उसे किमी जमान में इसी सिन्धुनद के मुहाने के प्रधान नगर मोहन-जोदबों में मिस्री, बाबुली, असुर आदि विविध जातियों के विदधा मिना करते थे वैसे ही सेह की सबकों पर अभी हाल तक निम्बती चीनी मंगोल, तुर्क, अफगान एक साथ बोसा करस थे । कारण कि सेह मध्य एशिया से कश्मीर और भारत जाने वाले वणिक्मय पर स्थित है और हमारे देश को उत्तर की ओर से घानेवासी चल की राहें उसी लह में समाप्त होती हैं । जैसे पश्चिमी जगत् से बस का राह घानवासी बस्तुएं भारत के पश्चिमी तट पर उतर कर मध्य बेग की प्रधान मण्डी उज्जनी की राह लेती थीं, वहीं से चारों दिशाओं में बितरित होती थीं वस ही इस देश से चीन मंगोलिया, तुर्किस्तान कुरासान आरमीनिया क्रिभिस्तोन जान वाले कारवां इसी सेह से होकर गुजरते थे यहीं दम लेते थे यहीं से आरम्भ होत यहीं समाप्त होत थे । चाह वह दम जिसे आज हम सहाय्य कहते हैं और जो भारत वसुधरा का बायां अर्धभाग है, देखन में सुद ऊपर और गरीब लगता हो, बेशक उसकी जमीन के ऊपर स एशियावासी सम्राटों के व्यवहार की बस्तुएं गुजरती रही हैं । इसी सेह की राह कभी हमारे देश की मममस और मोर जुस्तसम पहुंचे थे, बाऊद और सुसमान

के गहलों इसी की राह खण्डों और गहलों पर मदकर वे हस्तमिपियां गयी थीं जिनके प्रचार के लिये आज के कृतघ्न, पर तब के कृतज्ञ भीन ने मुद्रण यत्र का प्राविष्टकार किया था, जिस राह गये हमारे कांटे के जवाब में फूल बोने वाले क साधुओं के पदचिन्ह, यत्र सूक्रान और पीसी रेत के बावजूद आज तक न मिट सके ।

जो सदाख के पठार को सिव्वत का प्रसार मानते हैं उन्हें शायद पता नहीं कि मेह स सासा पहचने की राह हिमालय की एकता के बावजूद, उत्तर की धार स जोहूँ और लम्बी है करीब तीन महीने की। भारत की राह वही कबल महोने भर की है, जिससे सासा जाने वाले सदाखी धमी हाल जानी हमसे क पहले तक चौदह रोज में थिनगर-मठानकोट पहुँच कमकस से कलमपांग सिक्किम की राह हफ्तों में सासा पहुँच आते थे ।

सदाख सम्वी चौड़ी पहाड़ी भूमि है करीब ३०००० वर्गमील जहाँ के निवासी असस में जमीन पर न रहकर घासमान पर रहते हैं । सोचिय जरा, कि मसूरी और थिनगर की ऊँचाई कुस ५००० फुट से थोड़ी ही ऊँची है पर सदाख का नोचो से नोचो भूमि ८००० फुट से अधिक ऊँची है और जहाँ के निवासो १२००० से १५,००० फुट तक का ऊँची भूमि पर निवास करते हैं । सिक्किम को छोड़कर संसार का पाई देग नहीं जहाँ ने रहन बास जमीन से इतने ऊँच, घाम-माम क इतन पास रहने हा । सदाख का उत्तरी सीमा घन्ती हिमालय के नराकोरम की वह पधतमासा अला गई है जिसकी कुछ थोथियां संसार के उच्चतम गिरिनिसरा न गिनी जाती

हैं। काराकोरम के दक्षिण महात्मा नाम की ही दूसरी पवनश्रेणी है, पनी ऊँची मम्बक से हिमश्रवण। घोर मवस दक्षिण बह पवतमामा है अम्बर, जिसे वेद कर वेदा का हमारा महान् सिन्धुनद कदमोर का परकाटा बनाना महर्षि पाणिनि के गांव सायानुर को घोर उगार जाता है। अपन प्राचीनों का मन था कि सिन्धुनद को धारा जिन भूमि का घस्ता है वह समूची भारतभूमि है। आज उनके इस वाक्य का—उनका पुष्प क्षीण होजाने के कारण, उनकी सन्तान के निर्वीय हा जाने के कारण अंग-मात्र ही मर्य रह गया है, पश्चिमीय प्रान्त में, मिमगित में महात्मा तक।

सिन्धुनद की महात्मा घाटी के उत्तर शियाक की घाटी है काराकोरम घोर महात्मा की पवतमासाधों के बीच जहाँ मादामा घोर अखरोटों व पेड़ों के फल हन्की हवा से भी परम्पर टकराते बह अकार उत्पन्न करते हैं जो प्रकृत बाध के हैं। नीचे दक्षिण की घोर चिनाब घोर सतसज की घाटियाँ हैं, सिन्धु की घाटी का ही तरह घनों की बस्तारें वहा कुछ घनों की वासें १४००० फुट की ऊँचाई पर भी पककर भूमती भकारती हैं।

कौन सोच सकता है कि ये नदियाँ जो नीचे के मैदानों को इतना उबर बनाती हैं, महात्मा जैसे एक ऐसे भारतीय प्रान्त से भी होकर गुजरती हैं जहाँ उनकी घाटियों के प्रतिरिक्त कहीं बाई घन नहीं उपजता। प्रकृति को असामान्य बिहम्बना है कि ऐम ऊँच पठार पर बहुत कम पानी बरसता है, बहुत कम बक्र गिरती है, दिन में बेहद गर्मी पड़ती है रात

में बेहद सर्दी, और रेतीसी जमीन उत्तर की ओर फैलती, वरों के पार गोवा का रेगिस्तान बन जाती है। मेड़ों और बकरियों के बावजूद वहाँ चरागाह बहुत कम है पर ऊन वहाँ होती है खासी, गरम, और सज मानिए, यह कुछ व्यग्य नहीं है कि उस भूखण्ड का नाम जिसे आज सदास कहते हैं कभी मर-मुल था, 'मक्खन का देश'। हां, मक्खन वहाँ बहुत होता है और उसका रास अकसर चाय में खुस जाया करता है। चाय वहाँ सदा बेवस नमकीम ही नहीं पी जाती, मक्खन घोटकर एक खास किस्म का स्वाद भी वह पैदा करती है जो अत्यन्त दुर्लभ है।

पर इससे कहीं अधिक अजरज और भेद की एक दूसरी बात है जिसे सुनें। देश बहुत हैं, जहाँ कला का प्रचार है भोग बारीक शक्ति के हैं सुशक्ति के, जो श्लीषों का इस्तेमाल करते हैं सकड़ी के कटाव की चीजों का उपयोग करते हैं महलों में रहते हैं। पर वे सारे एक साथ भी बाहर से गन्दे दिखने वाले नितास्त निधन भगने वाले महाशयियों का सुशक्ति में कला को वस्तुओं के व्यवहार में मुजाबिला नहीं कर सकते। उन गिरिधिशरों के मठों की घट्टासिखाओं की बात तो जान लीजिए, जहाँ कला और ज्ञान को ससार में असम्य वस्तुएं प्रती पड़ी हैं साधारण से साधारण लदाखी गृहस्थ के मकान में ना सकड़ो और ऊन की बनी जिन चीजों का व्यवहार होता है वे कहीं भी ऐश्वर्यशाली घरों में सुशक्ति के समूने मानी जायेगी। और ना अपेक्षाकृत कुछ कम निधन हैं उनकी गग जमुनी धातु को बन्गुए तो फिलिपीं के वे समूने प्रस्तुत

करती हैं जिनका मुकाबिला अत्यन्त अप्राप्य है ।

किसाना सब क मकान दोमखिसे हाते हैं । नीच का सह भडाग मदेणी आदि रखने के काम आता है ऊपर की मखिल रहन क । पौरुष चाहे पुरुष के पास जिनना हो गृह का सचामन लदाखी नारी करती है जिसकी राह में उसके पुरुष कभी नहीं आते । पुरुष' शब्द का व्यवहार मैंने बहु बचन में किया है विषय प्रयोजन से । लदाख में निष्कृत की ही तरह मानुसत्ताक परम्परा अपनी शरमसीमा को पहचन गई है । मानुसत्ता का उपयोग वहाँ सम्पत्ति के क्षेत्र में नहीं होता जा निष्कृत साधारणत इम शब्द के प्रयोग से निकला करता है । मानुसत्ताक स्थिति वहाँ सामाजिक है बहुपतित्व के अर्थ में । एक की शक्ति अनेक के समस्त स्वभावतया सिद्ध है क्यों कि अनेक एक की सीमित करते हैं । भारतीय नारी समाज में बहुश एक की अनेक रही है कम से कम उसकी अनेकता में कानूनी प्रतिबंध नहीं रहा है वह शास्त्रत सम्मत भी रहा है जिनसे उसके अधिकार भी सीमित रहे हैं । सहाखी पत्नी की स्थिति इनके ठीक विपरीत है क्योंकि वह अनेक की एक हाती है । उसके पति के कुल के प्रायः नार भाई, कम से कम दो उस अकेली से व्याह करतें हैं । इमी स्थिति का महर्षि वात्स्यायन ने अपने 'नामसूत्र' में गांधिजम् कहा है । सारे भाइयों की एक साथ ब्रत रानी होती है और भाइयों में उनका कारण कभी गटपट नहीं होती । महानारत में अशुन के दिग्बिजय के अक्षर पर नामरूप की और 'श्री राज्य' की कल्पना की गई है सो अस्तुन असम के पूव के नागाधा के

सम्बन्ध में सही है। वही कल्पना करूँ तो ने अपनी 'राज तरंगिणी' में भस्मितादित्य की दिग्बिजय में मृत की है। परपतियों की सगिनी हाकर भी लहास की कुसपत्नी स्त्री राज्य की नहीं पुरुष राज्य की शासिका है। और जिस सुजनता और सफसता से गृह का नियोजन और पतिया के भावबन्ध का धारित्रिक मंदिर अनुशासन करनी है वही सहायियों के परस्पर तथा प्रतिधियों के प्रति आघरण में प्रकट होता है। उनका सौबन्ध सराहनीय है कोई विदेशी उनके मधुर मापण और मधुरतर मुसकान से प्रभावित हुए बिना नहीं रहेगा। मुसकान जो बादामी भाँखों का कुछ और पतसी, सन्धी मुसमडस के ऊपरी भाग को कुछ और व्यापक ठुड़ी को कुछ और नुकीसी आकषण का अधिक मधुमय कर देती है। सहास का जादू चम जाता है यात्री पर की दूरी भूस जाता है काराकोरम का बर्फ के वावजूद सहासी पवतमाला के वावजूद जस्कर का गिरिशृङ्खला के वावजूद।

लामाओं का यह देश न केवल सदा भारत का इष्ट रहा है बल्कि उसका निजी अपना। यद्यपि आज उसपर शत्रु की भाँखें गड़ी हैं वह फिर समूचा अपना होगा जैसे वह सदा अपना रहा है। उसी की राह भारतीय माहसी सेनाओं में कंसास तक की पश्चिमी भूमि अपने अधिधार में की है उसी की राह के काराकोरम की पवतमाला का साध एशियाई सुकिस्तान की धोरतक समय-समय पर जा पहुँची है। निश्चय वह मानस और कलासवर्ती भूमि जिसके पास ही सिन्धुनद चिनाव और सतसज के उद्गम हैं कोई हमसे भी न सकेगा सदा हमारी होगी।

१५ | कालिदास का हिमालय

हिमालय भारतीय सस्कृति का मूर्धन्य प्रतीक रहा है। वैसे तो समूचा भारतीय साहित्य उसका शान्निध्य से समुन्नत हुआ है। समूचा के सारे काव्यों में उसका प्रगति उपसन्ध है पर कालिदास का हिमालय विशेष प्रिय है और अपने काव्यों में बेवार-वार पवनराज का घर घाकृष्ट होते हैं। कुमारसम्भव का मधुषा काव्यविन्यास उनी गिरिराज क शिखरों पर उपत्यकाओं में अचम प्रसार पर हुआ है। मेघदूत का उत्तर भाग वनश्रवण की पर्वनी कृपान स चक्रर कसाय और मानस तक जा पहुँचता है जहाँ कवि की अलकास्निग्ध-गंभीर पुष्कर-माद से गुलत अपनी मिलि-चित्रों की सजा लिये प्रासाद सबे हैं और जहाँ अलका की स्वत मारी मगा की धारा वन कटि माग स छुट पड़ी है। रघुवज के पहल्य दूसरे और चौथे सर्गों की मानभूमि भी हिमालय की छाया में ही उठी है। अमिज्ञान-घाकुन्तल के मातर्व अक और विक्रमावर्गो क चौथे अक की घटनाएँ उसी नगाधिराज की उच्चावच भूमि पर अनावृत्त होती हैं।

और वह नगाधिराज हिमालय भारत का ज्ञायक प्रहरी, उसकी उत्तरी सीमा का निर्माणकर्ता, पूरसागर से पश्चिमसागर

तब पृथ्वी के मानदण्ड की भांति उसे तापता बना गया है। पूवसागर निदचम उत्तरी सीमा के पूर्वी भाग से पर्याप्त दक्षिण पड़ता है पर कवि की घादश राष्ट्रीय कल्पना म नेका व पूव तम उत्तरी भाग से उठरनी घमम घोर बर्मा क बीच से होनी घल्लण्ड शिसाघों की जो रेखा घगाम की साइड तक घनी गयी है वही देश की पूवतम सीमा का निर्माण करती है जम उसकी पश्चिमी सीमा का निर्माण वह हिन्दूकुण करता है जिसका एक छोर पामीरों की घभि क पास काराकोरम की शृखला पूर्व मे छुता घक्रगानिस्तान का शिरोभाग बनता घरव मागर तक बना गया है घोर जिसका पिछला उतार ईरान के पठार को छू सेता है।

हिमासय की इसी दीवार से निकसकर सिन्धु गगा घोर ब्रह्मपुत्र की धाराए खतवार हो इस देश की उत्तरवर्ती भूमि को उर्वर करती घी घात्र भी उनको घनेक धाराए देश की भूमि को बहुविध साधती है।

पामीरों की घभ्रुण्डली से निकस यह पर्वतमाभा ससार के उच्चतम शिखरों का घयस मस्तक धारण किए प्राय १० हजार मीम दौड़ती घनी गयी है घोर सुपारावृत घयस प्रसार के कारण सहज ही घपना हिमाद्रि तथा हिमासय नाम साधक करती है। कवि ने उसके घनेक गगननुम्बी शिखरों का उल्लेख कैलाश, गौरीशिखर गन्धमावन मन्दर मेरु घोर सुमेरु नामों से किया है। कैलाश, शौचर घ घषवा नीलिपाम के पूरव घाचिन घषघा रंगोत्री से परे मानसरोवर से कोई २५ मील उत्तर दिव के घनाभूत घट्टहान' सा घडा है जिसक स्पटिक

तुषार-रूपण के सामने लकी हो देव ससनाए अपना काय प्रसाधन करती हैं। कभी रावण ने अपनी भुजाओं का बल परखने के लिए कलाग को भ्रुकभार लिया था जिससे उसकी सन्धियाँ ढोसी हो गयी थीं, चूनें हिल गयी थीं और उस पवन के निवासी भीष पावती-महित महमा सम्प्रप्त हो उठे थे। यही कलाघ 'एकपिगमगिरि' है कुशरगल जहाँ यशराज भनद कुशर निवास कर असका क प्रामादों को अपने सदय से श्रद्ध करत हैं। वहीं हूमकूट के शिखर पर महवि मरीचि न दकृन्त्या का शरण दी थी जहाँ वणचित्रित मूर्तिकामयूर को पने फेंक भरत सिंहों क दाढ़ गिना करता था और पुरुरवा ने जहाँ वैद्य केपी के भ्रुक से वारबनिता उवदी को भ्रुककर छोन लिया था। कभी तिम्रतियों का यह प्रसिद्ध 'व्यग रिन-पोचे' नाम का यह कलाघ हमारो उत्तरतम सीमा का संतरी था।

गधमादन कलाघ के शिखर का ही एक भाग है संभवत उसका दक्षिणी भाग, जहाँ गिव का दाम्पत्य विलास पसता है और जिसके घन प्रान्त में उबनी को लोकर पुरुरवा सताविनानों स सम्पस्सकों म प्रिया की राह पूछता है जहाँ मन्दाकिनी के तीर मिक्ता के पवत फैले हैं, हृषों का पवत प्रधस सहगता है आह्लापी पुमिन के शारुदान हाते हैं। गधमादन पवत का माह न केवल कविवर का है बल्कि समूची भारताय पीराणिक कथाकारिता का यह मन्त्रित स्थान है जिसने उसकी मोगाणिक मीमाण प्रवहमान बन जानी है, कलाग से ददारकाश्रम तक, गङ्गात के उन पहाड़ों तक जहाँ से होकर घनकनन्दा की पवित्र धारा दक्षिणवर्ती उतार पर यह प्राची है।

पास ही मन्दिर है बदरिकाश्रम के नरनारायण का मन्दिर धारण करने वाला मन्दिरावास । महाभारत को उसे कैसाश और गंधमादन की ही दिशा में कैसाश के उत्तर रखना अभिप्रेत है । शिव का दाम्पत्य विसास मेरु पर पसकर इसी मन्दिर की गुहाओं में कुछ काल खो जाता है, फिर कैसाश और गंधमादन की ओर उसका संक्रमण होता है ।

मेरु (सुमेरु), जहाँ उमा का सप-पूत मुक्त विजित गकर पहली बार धनवगुण्डित करते हैं, कैसाशवर्ती ही है उससे बहुत दूर नहीं, छद्महिमालय में ही अवस्थित जहाँ से जाह्नवी अपना जीवन पाती है । मत्स्यपुराण ने राष्ट्रीय मोह से सुमेरु की सरहद बांधी है—उत्तर में उत्तरकुण्ड दक्षिण में भारतवर्ष पश्चिम में केतुमासा पूरव में फिर भारतवर्ष । सुमेरु चाहे जहाँ रहा हो पर उसका मोह भी भारतीयों से न छूटा और गढ़वाल का केशरनाथ धाम भी परम्परया उसी नाम से मुखर है । सुमेरु स्वर्णमण्डित है विद्याधरों किन्नरों अप्सवमुक्तियों, किपुरुषों का आवास, जिसका स्वर्ण चाहे छुट जाय पर जिसके प्रसार पर बाभारुण और अस्तगामी सूर्य द्वारा प्रातः-संध्या विखेरा सोना कौन हर सकता है ?

कामिदास को मारती जिस भोकोत्तर भाव गरिमा से हिमालय का उल्लेख करती है वैसा उल्लेख किसी कवि ने किसी गिरि का नहीं किया । जनक्याम मेष गिरिराज के कटिभाग का अपने स्यामम भावर्त से घेर भेते हैं । उनकी छीतल छाया में सिद्ध-बनिताएं वात और वर्षा से डरी शिखर शिखर आ धूप का सेवन करती हैं । हसी की पातों नीचे के से मैदानों से

उठकर गिरिमण्डित गंगा की ओर उठ जाती है, जहाँ उस पवित्र धारा की नीहारिकाओं से बोझिल वायु यात्रियों का श्रम हटती है किन्नरियों का गायन में कम्पन भरती है, वनके झाँझों के रझों में प्रवस कर उनमें बसी का स्वर फूकती है, मोत्र सरुओं से पतित पत्रों से मरमर ध्वनि उत्पन्न करती है। नमक वृक्षों की घनी छाया में कस्तूरीमृग गिराणों पर बठ विधाम करत हैं और गिलाए उनकी गंध से महमह हो उठते हैं। दबदारुओं के घन बन में उनकी शाखाएँ परस्पर जो रगड़ जाती हैं तो सहसा दावानल मड़क उठता है और तमपूरित रात्रि माममान हा उठती है। हिमासय फिर भी दावानल के बदबानर से रात्रि को प्रकाशित हान की अपेक्षा नहीं करता अनेक घनक औषधियाँ उससे बनप्रान्तर में फसी हैं जो दिवा का प्रबसान होत ही बस उठती हैं और रजनी विभावरी हो जाती है तसहीन दीप बहु ओर जस जस उठत हैं। उधर वह शैशरध है, कुमाऊ का नीति-वास तिब्बत जान का द्वार जो परशुराम की शक्ति की घोषणा आज भी अपने शक्ति द्वारा कर रहा है—कभी उस वीरकर्मा विप्र ने अपनी पुत्रुविद्या की परीक्षा के लिए उधर तीर मारा था और शैशरध बन गया था। पहले उस राह हंस उड़े फिर भारतीय यात्री बल विषर कमाश हास के कटे हाथीदाँत की तरह खड़ा था। और उसी उधर क दवतावास की छाया में मानस का बहु पुनीठ सर है जहाँ स्वर्णकमल खिलते हैं जहाँ वर्षारम्भ के लिए मीषे के गाँवों का सरों का हंस मृगास का पायेय से उड़ पड़ते हैं। मानस के स्वर्णकमलों के प्रति, पीतारविदों के प्रति, रात्रहसों

राजहंसियों का घामह क्यों न हो। मैदानों में जब मदियां उमड़ पड़नी हैं घरा पर छाया वर्षाबस अब उनके माहार को डक सेना है तब मानसबर्ती निभाए हा उनका घावाम बनधी है। मन्दाकिनी के तीर विद्याधरों की बामाण स्वर्णसिबन्ता से सेसती हैं घौर यक्षों की असका के प्रासादों में ओ रत्नदीप असते हैं उनकी लौ कामातुर यक्षा की सतायी यक्षिणियां साजवद्य मृदुती भर भर चुण फेंक-फेंककर भी नहीं बूझा पातीं। मयाधिराज हिमालय के प्राग्तर पर डोसतो खबरी गायें अपने पुच्छ-धंवर भक्त गिरिराज क राजत्व का परिच्छेद पूर्ण करती हैं। गिरि राज की गुहाओं में मृगराज रमते हैं घौर जब-तब बनबर दम्पति अब उनकी काम-कर्मि को ढकने के लिए झोने मेघ तिरस्कारिणी वन गुहा के द्वार पर सटक जात है।

हिमालय घमस्त रत्न प्रसव करता है बिहें वहाँ के बनबर प्राय सोजते फिरते हैं। अब सिंह गर्जों के गण्डस्वस पंजों के प्रहार से बिदार गजमुक्ता झट सत हैं कवि कहता है तब गजमुक्ताओं को हेरते बनबर उनका सुराज सिंहों के पजों की राह में छाडी रकनछाप से पाते हैं। गजा के मुण्ड अब देवदारुओं का रगड़कर तोड़ देते हैं तब वनाम्न तक उन तरुणों के क्षीर की संख गंध फल जाती है। जिन देवदारुओं को पावती अपना तमय मान अपने दूध से पालती है उन्हें क्रूर गज अब ताड़कर नष्ट कर देते हैं तब भसा पावती क बाहन क्रूरतर सिंह उन्हें समुचित दण्ड क्यों न दें ?

गीराशिलर का पबित्र पवन नेपाल में है—गीरीशकर के नाम से विख्यात। अनक सोगों ने इसे माउण्ट एतरेस्ट माना

है जिस पर भारतीय दौरपा ने एक दिन भारत का भण्डा माह दिया था। एवरेस्ट चाहे गौरीशंकर न हा, पर निस्सन्दह गौरीशंकर धाज हिमालय की जिस पर्वतमाला में है वह कनी मागतोयों का बन्ध था जैसे वह धाज भी उनका बन्ध है, मद्यपि जो एवरेस्ट की हा भांति धाज हमारी सीमा स हट गया है और जिसका प्रत्यक्ष-मात्र हम दूर दार्जिलिंग स कर पात हैं।

हिमालय की पर्वतमाला में धनेक प्रपात हैं जिनकी संख्या पाषय में गगनातीत हो जाती है। इनमें से दो—गंगाप्रपाठ और महानाभीप्रपाठ—का कालिदास न उल्लेख किया है। जैसे तो इनका सुबध गंगा और महाकोशी नदियों से है पर वे वस्तुत कहीं से, यह निश्चित रूप से कह सकना धाज कठिन है। गंगा प्रपाठ वसिष्ठाथम क पाम ही कहीं होना चाहिए था जहाँ कभी पुत्रवताधारी राजा दिलीप गोधारण करते थे। वसिष्ठा थम हिमालय की उपत्यका में ही महाकवि ने स्पष्ट कहीं रखा है, या वसे रामायण की परम्परा से भिन्न है। महाकोशी नपास की सप्तकोशियों की मम्मिलिन धारा है। उमो प्रपाठ क तीर विष हिमालय की कन्या पावती को निष के लिए सिंगिराज से मांगने गए सप्तपियों के लौटने की प्रमीक्षा करत हैं।

हिमालय क गले हिम से ही निकल उतगी भारत की प्रधान ननियां नाथ के मदाना में उतर धानी हैं। पजाय की पांथा ननियां और सिन्धु का निकाम भी हिमालय स ही है। इनम स कई का पाश्चिमान की धरती धारण करती है। गंगा

का उद्गम गंगोत्री है। गोमुख द्वार से गिर समूचे मध्यदेश को उर्वर करती ब्रह्मपुत्र को भेंटती वह पवित्रपाविनी गंगा सागर में सय हो जाती है। बाल्गवी भागारषी की यह धारा पौराणिक प्रसंगों को अननी महान् सम्भताओं का भावि कारण रही है। यमुना बन्दरपुच्छ के कसिदगिरि से निकल कसिदकन्या नाम सार्वक करती हिमासय का अस प्रयाग तक बहा से जाती है मीर वहां, जैसा कवि ने कहा है श्वेतनीस असपट बुने में सहायक होतो है। नदियों का वह सितासित' संगम देखते ही घनटा है। उसी हिमवान से बहकर सरयू कासीनदी का अस लिये भयोध्या को पुनीत करती गंगा से आ मिलती है। सरस्वती का उद्गम हिमासय के खिरमूर पहाड़ों में है, सिवालिक में वही से भादि बड़ी की राह उतर वह मरूमि में सो जाती है। ऋग्वेद का भावि मानव उसे पवित्रतम मानज्ञान की धारा से अभिन्न कर देता है। फिर जब वह उसे नहीं भुमा पाता तब प्रयाग की त्रिबेणी में उसे अन्तःसमिला कह सम्बोधित करता है। क्रुक्षेत्र के भारत युद्ध के समय बभराम युद्धविरत हो हिमतनया सरस्वती के ही तीर आ बसे थे। गंगा की एक धारा मन्दाकिनी भी थी जिसे हिमालय के ऊचे खिखरों से गिरने के कारण कवियों ने स्वर्गगा भी कहा है। हिमवर्ती प्रदेश में ही यह अक्षकनन्दा से आ मिलती है और अक्षकनन्दा अस्तत गंगा से। उसी हिमासय के उत्तरवर्ती छोर में ब्रह्मपुत्र का उद्गम है जो तिब्बत के पहाड़ों से होता मेघा की राह अपने ही नाम की भाटी में उतर जाता है। उसी नद के तीर भारत ने पहले

पहले रेशम के कीड़े पाले थे, रेशम के पट बुने थे। उसकी धारा को सोहिन प्रांत में प्राची घाकाश में उठने वाली सूर्य की किरणें साज कर दिया करती थीं और उसका नाम 'सोहित्य' (यह व्युत्पत्ति साधारण-भिन्न है) सार्थक हो जाया करता था। और बालारुण की ज्योति का प्रथम दधान करने वाले प्राग्ज्योतिष के नागरिकों को अनेक बार भारतीय राजाओं ने दण्डविधान से मण्डित किया था। पवतराज के उत्तुंग हिमाबृज सिखरों से निकल पहले जसबाराए शिखरों पर पनबी धार से गिरती हैं टूटती बुर होतीं मदाना में उतर पाती हैं और वहाँ उनका विभुवत विस्तार हो जाता है।

पुराणों के अनुसार इसी हिमालय में, इसके मध्यभाग में अवस्थित बहु धनवतपुन मरोवर है अहाँ से चार प्रधान नदियों का विकास होता है। सीता अथवा यारकन्द की धारा पामीरों की ढल उतर यह आती है। बलुनद (धामू दरिया) पश्चिम, सिन्धु दक्षिण और गंगा पूरव की ओर। बलु की घाटी हिमालय से मिले पामीरों के ही पश्चिमोत्तरी उतार पर है अहाँ अनेक सन्न्यशाण फली-फूलीं और जिसके करगना-अदरुशों के गीत किरदोत्री ने 'धाहनामा' में गाये। बलु के तीर कौ बमारियों में केसर फूलती है, और एक बार जब बहाँ के हूणों ने—कामिदास भी कासबिरुद्ध दोष से मुक्त नहीं—भारत की धार निगाह फेरी तब रघु ने कौत्रक अमरान पहाड़ों की बगली द बलु की उस घाटी में उतर गये थे और अपने रियास के घोड़ों को उन्हाने उन्हों कीमतों बपारियों में बिश्राम दिया था, जहाँ केसर घोड़ों की घटों में सिपट उन्हें साज कर देती थी।

मुर्गो दाद अब चन्द्र' ने पञ्जाब की सातों—'तोर्वा सप्तमुञ्जानि येन समरे मि-धोजिना वाह्लिका'—नदियों को पार कर बसख न निवासियों वाह्लिकों का भीता था तब उस घाटी की याद वह न मुसा सका था और उसने महरोसी (पृथ्वीराज की दिल्ली) के पास अपना सौह स्तम्भ लड़ा कर उस पर अपनी इस विजय की प्रशस्ति खुदवा दी थी। भारत की सीमा तब ईरान से टकराती थी और रघु अब दाख से डकी ईरानी भूमि (द्राक्षाबलयभूमिपु), योसन का बर्रा साथ गिरिष्क या पहुँचे तब ईरानी अश्वारोहियों ने दातों में सृण दाद मस्तक से पगड़ी उतार उनकी अभ्यर्चना की थी।

कालिदास का भारत की प्राकृतिक सीमा प्रस्तुत करने का प्रयास कभी इतिहास सम्मत भी था कुछ कालिदास का अपना नहीं। तोसेमी ने सिन्धु के पश्चिम के प्रदेशों—बसु चिस्थान और अफ़ग़ानिस्तान दोनों—को भारतीय सीमा के भीतर गिना था। उधर के सारे प्रदेशनाम मूल में संस्कृत हैं और वह समूची भूमि इस्लाम की विजय तक भारतीय राजाओं द्वारा शासित होती थी। यदि तोसेमी द्वारा निर्धारित भारत की पश्चिमी सीमा हम स्पष्ट करना चाहें तो हमें सिन्धु के मुहाने से बसख तक एक ऐसी रेखा खींचनी होगी जिसके भीतर न केवल कन्दहार गजनी और काबुल पड़ेंगे बल्कि उनमें भी पश्चिम के प्रदेश जिससे प्रायः समूचा हिन्दूकुश उस रेखा के भीतर आयेगा। यदि तोसेमी हिन्दूकुश और घामु दरिया के उद्गम को भारत की उत्तरी और पश्चिमोत्तरी सीमा मानता है तो कुछ राष्ट्रवादी कालिदास उन्हें अपनी सीमा

के मोतर क्यों न मानें ? हिमालयवर्ती तब की इस भारत भूमि की पर्वती सीमा यही प्रामु दरिया था जिसके भ्रष्टधन्नाकार मोड़ के पुरव कश्मीर की सीमा पर काराकोरम के उभर की दिशा में बहता है और उसी से सगी पामीरों के खरण में साटी वह घाटी है जिसके एक धार सिन्धु की उपरती धारा है दूसरी और प्रामु और यारकन्द का उद्गम जात । इसी घाटी की राह लोग एक ओर सिम्बत, दूसरी ओर तुर्किस्तान जाते थे । बस्त्र से बनावत न सगम तक खुलत की राह होकर जाते थे और यदि कासिदास के मन में उभर की किसी राह की संज्ञा थी तो निश्चय रघु ने वही राह ली होगी जो मिकन्दर ने बस्त्र तक भी थी और फिर उत्तर-पूर घूमकर बदस्था और बख्श की राह कम्बोज की सीमा पर बे जा पहुंचे होंगे ।

प्राये का देश मिम्सन्देह सब के भारत का न था और रघु घूमरी ओर से लौटने के लिये फिर हिमालय पर बढ़े । राह में कश्मीर और बह्लिकों के बीच, पर कुछ पूर्वपत, कम्बोज थे जिन्हें सर करना बरुरी था और कम्बोज घीम की सीमा तक फैसे वे हिमालय के परे । कश्कण ने 'राजतरंगिणी' में कम्बोजों की कश्मीर के उत्तर में रक्ता है जिन्हें मुक्तापीठ सन्निधादित्य ने दरदों के साथ अपने प्रताप से झुमस दिया था । रघु पामीरों की धार से जब यारकन्द की घाटी से होकर कम्बोजों के बीच से निकलत तब काराकोरम की शृंखला सामने थी । उसी का दर्रा साँव बे गंगा की उररती धारा का धार निकल गये बायीं धार, सम्भवतः सदाक के सिरे सिरे दरदों के बीच हाकर । कुछ प्रजब नहीं जैसा कासिदास के संकेत से प्राय स्पष्ट है,

जो रघु संभवतः और पूरव से चम समूचे लहास को अपनी सोमा में लेते। और यदि उनका गंगा के कर्णों से बोलिस्तान कीतम वायु से अभिवृत्त होना सही होतो इस अनुमान में तनिक भी संशय नहीं रह जाता कि उनकी राह हिमासय और महास के बीच होती ब्रह्मिनाथ-गंगोत्री को साघती गंगा और यमुना के बीच पहुँची होगी जो कनास के निकटवर्ती उस्सस से स्पष्ट भी हो जाता है। यदि कम्बोज देश घवक्षी का एक भाग और मारकन्द घाटी से सगे समजा भूमि रहा हो तो तब की भारत की सोमा के भीतर उसका होना महज जान पड़ता है। देश अखरोटों से भरा था जिनके तनों से रघु के हाथी बांधे गये थे और उन अच्छे घोड़ों को खाति प्राप्त भी वहाँ की विशेषता है जो अगणित संख्या में रघु को भेंट किए गए थे। कम्बोजों द्वारा रघु को प्रदत्त रत्न का उल्लेख समजाभापी शहर मुम्बान की गोमेद की खानों से सार्यक हो जाता है। इसी समजाभापी प्रदेश में कश्मीर के उत्तर और उत्तरपूर्व कम्बोजों का निवास था महास से सगा, कुछ और उत्तरायत या प्राय भीम में है। इन्हीं भारतीय कम्बोजों ने कभी कम्बुज अथवा कम्बोदिया में, भारत-वर्मा के दक्षिण-पूर्वी दिशा में अपना सांस्कृतिक उपनिवेश खड़ा कर उसे अपना नाम दिया था।

हिमासय की पवतमासा में ही रघु ब्रह्मपुत्र की घाटी की ओर बढ़ते चले गये थे किरातों उत्सवसंकेतों किन्नरों की दिशा में। प्रारम्भ में किरात पडते थे मर-युस (जिसे तिब्बती मध्यकाल में मरु-पुस अर्थात् 'मकलन का देश' कहते थे वही आज महास कहलाता है) में कामिवास के किरात निषय

सहाय, जस्कर घोर रूपू के तिब्बती थे, यद्यपि कुछ प्रयत्न नहीं ओ जातिवादी किरात सजा से तात्पर्य दूर तक फैले उन तिब्बती जातियों से भी रहा हो ओ कराकारम घोर गंगा से पुरब कैसाय घोर मानसरोवर के निकटवर्ती प्रदेश में रहते रहे हों । मोट घोर किरात नाम प्राय समानार्थक रूप से पहले प्रयुक्त होते रहे हैं । भूटान का भारतीय साम्राज्य के अन्तर्गत होना इस प्रकार प्राचीन परंपरा की भावभूमि पर खड़ा है । श्रीक मार्वी द्वारा पहली सदी ईसवी में लिखा पेरिप्लस किरातों को गंगा के किनासे के पश्चिम घोर तोसेमो उन्हें टिपरा के निकट रखा है । पर प्राय भारतीय साहित्य में उत्तरवर्ती किरात हिमालय की समूची शृंखला में विशेषकर ब्रह्मपुत्र की घाटी में, बस बताये गए हैं । कालिदास के रघु का सम्पर्क उनकी पश्चिमी जातियों से सम्भवतः सहाय के पासपास ही हुआ था ।

किन्तु किरातों से भिन्न वे घोर उनका उत्सेख अक्षर मानवेतर यज्ञो-गन्धर्वों के साथ हुआ है । सम्भवतः वे कैसाय घोर मानस के पश्चिम में बस थे । सधमज की घाटी में जहाँ अन्धभाग की घाट निकट था जाती है वहाँ कहीं, प्रापुनिक कन्नौर के पास किन्तु का निवास था । उत्सवसंकेतों के प्रति कवि का संकेत सांस्कृतिक है । इस सजा से उन जातियों का तात्पर्य है जो सगोत्र संबंध करती थीं, जिनमें ब्राह्मिक बंधन निमित्त थे, जिनमें 'उत्सव' अर्थात् प्रणय का प्राधिक्य था घोर ओ 'संकेत' द्वारा अपने प्रियों को बुला लेते थे, अथवा स्वयम् प्रेमातिरेक में बुलाये जा सकते थे । कन्नौर का प्रदेश आज भी इस प्रक्रिया से सहज समत है ।

पूर्व में कामरूपों का निवास था, आसाम की घरा पर, बर्मा तक लीहृत्य जिसे अपने रस से सींचता था, प्राग्ज्योतिष, गौहाटी उनकी राजधानी थी ।

हिमालय प्रकृति का अमिराम आवास देवताओं की पुनीत भूमि हिन्दूकुश की पश्चिमवर्ती शृङ्खला से जुड़ा पामीरा की उन्नत भूमि पर मस्तक धरे, कम्बोज-सहास को अपने अन्तर में सपटे, कैलाशवर्ती भूमि से मेक्रा के समूचे उत्तमांश का परि-कर बांधे बर्मा तक बला गया है । हमारे ऋषियों के ज्ञान का विकासक नदियों के उपरसे स्रोतों का सञ्चारक हिमाक्षय । क्या हम उस पर पश्चादात सह सकते ?

संस्कृत कवियों की राष्ट्रीयता अखण्ड भारत की सीमाएँ

संस्कृत के कवियों की एक विशेषता यह रही है कि उन्होंने अपनी रचना का रूप एकांगी नहीं रखा। उन्होंने अन्तरंग और बहिर्गंग समान रूप से साधे। जिस धारणा से उन्होंने अमूर्त भावों का मूर्तन किया उसी धारणा से अपने चतुर्दिग वातावरण का भी अपनी सूक्तिका से अभिराम चित्रित किया।

अमूर्त उनका प्रकृति और पुरुष अनेक बार अभिन्न हो गए हैं मानो एक ही वस्तु पुरुष और प्रकृति के रूप में सधरा सैसी हुई है और कवि रूप में पुरुष कभी अन्तस्य हो वैयक्तिक व्यापक चिन्तन करने लगता है। कभी फले जगत् के प्रति उत्सहित हो व्यापक प्रकृति की अन्तमुष्मा से मुक्त हो उठता है। एक स्थिति दूसरी से परित्यक्त अथवा अभिन्न नहीं हो पाती, लगता है जैसे व्यक्ति और प्रकृति एक ही विन्यास का अभिन्न हों एक-दूसरे के न केवल पुरुष यत्कि एक-दूसरे में समाहित।

वाल्मीकि, व्यास धृतराष्ट्र, कालिदास मारुति, माघ, श्रीहृष, जयदेव, जगन्नाथ, हण्टी, बाण प्रकृतिभिन्न-मात्र पुरुष को उपमथि प्रस्तुत करनेवासे नाट्यकार तक प्रकृति के

वातावरण को अनेकधा अपने वर्णन का अन्तरग बना सेते । प्रकृति उनसे परे न होकर उनको अपनी हो जाती है अथवा स्वयं प्रकृति के अपने हो जाते हैं । इस प्रकृति का आ विस्तार वही संस्कृत कवियों की राष्ट्रचेतना का संकेत है । उनकी राष्ट्र-यत्ना उनकी प्रकृति से भिन्न नहीं यद्यपि वह प्रकृति भारत विविध राज्यों की निम्नी सीमाओं द्वारा परिमित न होकर अ-परिवेक्ष में समूचे भारत को समेट लेती है । अस्तुत उन राष्ट्रीयता वहाँ एक धार राज्यों की एकस्य श्रृंखला को उन सह-अस्तित्व और परिवार को स्वीकार करती है वही । भारतेतर प्रायों को भी अस्वीकार कर अपनी सीमाएँ मा की भौगोलिक सीमाओं से अभिन्न और एकांगी कर लेती है उदाहरण के लिए कोई भी संस्कृत कवि भारत के बाहर प्रकृति का वर्णन नहीं करता उसको वर्णन प्रक्रिया उत्तर दि में हिमालय और शेष तीन विशाओं में सागर से सीमित जाती है । राष्ट्रनीति में चाहे संस्कृत कवि अपने-अपने सरस राजाओं के यश का साहित्य में अमर करे पर निश्चय प्रकृ के विन्यास में उनकी प्रक्रिया अपने राज्यों की सीमाओं लौघ भारत को भौगोलिक सीमाओं से बंध जाती है । रा तब राज्य से अभिन्न नहीं रह पाता सत्कर्मक्षीन सांस्कृति राष्ट्र के अनुरूप अपने समाहित विस्तार को देखता है अ अक्षर्य भारत का भौगोलिक पर्याय बन जाता है । इसी दक्षिणात्य दृष्टी मध्यभारत अथवा उत्तर की उपेक्षा नहीं । पाता न मध्यदेशीय वाणभट्ट ही अशोक सरावर की । अ

समाहित कर लेते हैं जब कि वास्मीकि के प्रयाम का भूगोल कथा के स्वभाव से ही व्यापक है और व्यास का वमस तो वास्मीकि से निल, सदिया की एकस्य धनन्ता का परिधायक है। कासिदाम का कर्तव्य एकान्तिक है एक सम्पन्न प्रचुर और प्रभूत की एकीभूत कविसत्ता।

कासिदाम सहस्राब्दियों का सत्ता स्वायत्त कर मुखरित होता है, धनन्त का एकत्र दलना है देग और काल की प्रवहमान गति को जैसे अपने कृतित्व में मकेन्द्रित कर क्षण भर के लिए राख सता है। समय और मुखि बहुमता को बद्ध नहीं हाने दत्त और वास्तुकार की मया से गित्यी के तक्षण से वह अपने परिष्कृत श्रीकृमाय द्वारा कृतित्व में समा लेता है। फिर जैसे जादूगरी के माध्यम से हो नाम और विशाम धम और दर्शन साहित्य और कला धर्म और राजनीति प्रावश्यकता-नुसार भावीदगीरित यत्रवत् यथच्छ करने लगत है। पर बहु भारतीय कवियों का मूल सत्य कासिदास के संवध में भी सही हो जाता है कि वह महाकवि भी भारत की सीमाएँ के बाहर नहीं जाता कम से कम सांस्कृतिक धर्मवा स्वीकृत सीमाओं के बाहर नहीं, यद्यपि उसका सम्बन्ध का सम्बाधित सन्तम धमाधारण बढ़ा है और उसकी मूलिका का 'स्वोप' केनधम के धमाधारण विस्तार पर महसा फेस जाता है।

कासिदास के 'स्वोप' का उदा धम्यात कोजिए—'रघुवंश' के धार्यावत स धमनबासी सेना का धमियान-संक्रमण जिसकी परिधि में पूबधागरगादिनी दिगा के सृष्ट उत्कम धामध, कावेरिपयन्त मद्रास दक्षिणवर्ती दर्दुर, मलय करल, पाश्चात्य

अपरान्त और सह्य, फिर उत्तरवर्ती महभूमि, पारसीक, वदा भाटो क वङ्गोक और हूण हिमालय क कम्बोज किन्नर और दरद फेलास, सीटिस्य और प्राग्ज्योतिष सभी घा जाते हैं। दूसरी परिगणना में वणन की राजनीतिक प्रक्रिया में रघुवश के मात्र एक सम (छठा) क केवल एक मन्दर्म इन्दुमती के स्वयम्बर में समूचे भारत क उत्तर से दक्षिण और पूव से पश्चिम तक के राज्य-परिवार एकत्र गिन लिये जाते हैं। तीसरी और सँका से अयोध्या तक के अनेकानेक स्पस दक्षिण सागर और सरयू की धारा के बीच मानसात्मिक राम की वाणी में मंदिर संस्मरणों के सदर्भ में उल्लेख पड़त हैं। मेघदूत का 'स्वीप' तो नागपुर के पास रामटेक से उठता है और उत्तरवर्ती समूचे मध्यप्रदेश समूचे मध्यदेश और ब्रह्मावत पार कैलासपर्यन्त गगनदी कान्तारवनपद पर सेता है। कैनवन का यह विस्तार भारतीय सीमा के अन्तर्गत स्वयं निःसीम है, पर कवि की दो कृतियाँ ऐसी भी हैं जहाँ वह क्षण को अनन्त में और परिमित को निःसीम में लम्बायित कर देता है। 'कुमारसम्भव' मात्र हिमालय को सकेन्द्रित कर सुकम को विस्तार में देखने का प्रयत्न है, जैसे 'ऋतुसंहार' क्षण में समूचे वर्ष को देखने का प्रयत्न।

'कुमारसम्भव' और 'ऋतुसंहार' में अभिराम तथा विश्व-क्षण क अतिरिक्त एक विशेष अन्तर देश और काल का है। 'कुमारसम्भव' में परिमित प्रदेश की विस्तृत भावरागासक्त गरिमा अभिव्यक्त हुई है 'ऋतुसंहार' में समस्त काल का पठनीय क्षण में रोपा गया है। न 'कुमारसम्भव' का अभिराम

उत्तुग - गरिम वैभव मध्यप्रदेश की सीमाघा में समा सकृता
 या धीर न 'ऋतुसंहार' की पङ्क्तियों के सङ्ग्रमणशील सौन्दर्य
 का निरूपण नगाधिराज की हिमभूमि में समव हो पाता ।
 हिमासय में उसी प्रकार पङ्क्तियाँ नहीं होतीं जिस प्रकार यूरोप
 भादि के शीत प्रधान देशों में नहीं होतीं । वसे कुछ सप्ताह
 वहाँ बसंत भी होता है, कुछ सप्ताह ग्रीष्म भी, पर शीत कम-
 बेश वहाँ बराबर बना रहता है और वर्षा का तो कोई समु-
 चित नियम ही नहीं । इस दृष्टि से ऋतुओं का सही परिपटन
 भारत के अन्तरग म ही समव है और कासिदास ने उचित
 ही उसके लिए मध्यप्रदेश को चुना, वहाँ मानव वातावरणीय
 प्रक्रिया को पूणत बदसते जानेवाली ऋतुर्मा का आनुक्रमिक
 सङ्ग्रमण देखता और भवता है ।

कासिदास की राष्ट्रीयता इन सब लणों पङ्क्तियों मासों
 और ऋतुओंकी, गावों नगरों, जनपदों और राज्यों की भावा-
 त्मक एकता प्रस्तुत करती है । अमिराम सुपमा और रणार्कन
 की प्रक्रिया तो कविक्रम है, कवि के सकल्प का अनिवाय आघार
 और आदिबिन्दु । जो कवि सेवनी उठाता है उसके अनिवाय
 आबधक ये 'प्रस्थानद्वयी' हैं । पर अप्यनध्य कवि की सधयित
 प्रक्रिया है जिसम उसक दृष्टिकान सधा जीवन के अमिप्रेत
 निदिष्ट होते हैं । कासिदास का समूचा वष्य राष्ट्रीयता की
 समाग समा प्रन्तुत करता है जो इस प्रकार है ।

प्रदण्ड भारत की भौगोलिक भावसत्ता की दिशा में कवि
 के समन्वित अमिप्रेत क प्रति अर सकेत क्रिया जा चुका है ।
 कवि का भौगोलिक विग्यास विधा है जइ धीर बेतम, दोनों

को समेट लेनेवाला। उसकी कृतियों में प्रदेशों, जनपदों, नगरों, जनप्रान्तरों, नदियों, प्रपातों, पर्वतों, समुद्रों आदि का जो विराट् और निःशेष वर्णन हुआ है उनसे कुछ भारतीय भूगोल का महाग्रन्थ बन सकता है। ऐसी-ऐसी जनधारार्यों का कवि की कृतियों में निर्देश हुआ है कि भूगोलवेत्तार्यों को भी उनके समय में सोज की आवश्यकता पड़ जाती है और वह सोज उनके ग्रन्थ का आधार बनती है।

चेतन के परिवेष्ट में पूर्वा से अक्षय तक शशम स गहक तक इन्द्रगोप से क्षेपनाग तक चींटी से गजेन्द्र ऐरावत तक मर्कट से मानव तक मेढक से असहस्ती और ज्वाल तक सभी अपने स्थान पर अपना उल्लेख अनिवार्य पा जाते हैं। और कहीं-कहीं तो यह सन्वम इतना व्यापक हो उठा है गागर में सागर से कहीं व्यापक कि सारा जगत् स्लोकार्ध में सन्निविष्ट हो गया है। उदाहरणतः सन्दर्भ में एक शिव की समाधि का। समाधि भूमि के द्वार मार्ग की रक्षा शिव का गणप्रवर नन्दी द्वारपाल की मुद्रा में अधिकार सूचक त्रेत्रयष्टि को वामस्कन्ध पर टिकाये खड़ा, कहीं शिव की समाधि भग न हो जाय इसलिये, होंठों पर उंगली रखे चराचर को जैसे संकेत से चित्रापित प्राकृतियों की भाँति निस्पन्द हो जाने के लिए सावधान करता है—मा चापलाय—खबरदार, कोई हिने-हुसे नहीं। और उस सन्दर्भ में जो कालिदास ने समस्त चराचर को अपने सूक्ष्म बिभेक्षण द्वारा निर्विष्ट कर दिया है उसका 'स्वीप' ससार के साहित्य में अजाना है—

'निस्पन्दवृक्षां निमृताद्विरेफं मुक्ताण्डव्यं धान्तमगप्रधारम।

भौगोलिक सपदा की अभिव्यक्ति कवि का, उसके अभिराम प्रकन के भावजुद, स्पून काय है आकार का निरूपण, पिण्ड की तन्मध्य सत्ता का मूतन। और वह ऐसा है जैसा कवि अपने भाक्षुय प्रयत्न से देख पाता है जसा वह उसे हृदयगम कर रागसिक्त आकसित कर पाता है। सूक्ष्म यद्यपि इससे सबधा परे नहीं—क्योंकि सूक्ष्म स्पूस का ही सूक्ष्ममूठ रूप है—है वह आप्त तत्त्व, कवि का आप्त तत्व जितना हा सकता है। कवि का आप्त तत्व इनना मृजन में नहीं जितना उसके नवसधान में है नवनिन्दन में नवीकरण में बयक्तिक सुचेत, आरम-निष्ठ समाजनिष्ठ मग्रहन में। समाज द्वारा सदियों के कास-प्रसार में निर्मित ज्ञान बिज्ञान को त्रिम मात्रा में कवि अपने व्यक्तित्व के विकार स उसके संयम और उन्सास से, अगीकृत नवीकृत कर अपने स अभिन्न कर मता है उसी मात्रा में वह अपने अक्षय राष्ट्र की सुक्रमणीस देग और काल के परिमाण में अपरिमित राष्ट्रीयता का परिचायक होता है। सदियों के भारतीय समाज क धर्म और राजनीति साहित्य और कसा, दान और धम, विद्वांस और मान्यताओं समोपत समूचे ज्ञान-बिज्ञान का त्रिम मात्रा में कासिदास ने हृदयगत कर उसका उद्गिरण किया है उस मात्रा में अन्य किसी कवि ने नहीं किया और उसी मात्रा में राष्ट्र की राष्ट्रीयता कासिदास में सन्निहित हुई है।

राजधम, प्रजाधर्म, राजा का कास का कारण होकर भी दिनकर्या के कासधमन द्वारा कतव्य के प्रति जाणस्क और संभमित होना उसके तत्त्वों का प्रचारजन धम से निर्मित होना,

कृतियों में दे दिए हैं। पुराणों के नये देव-वर्गों के अभिजात मूर्तम, विविध प्रभामण्डलों के विकसित अभिप्रेत, मकरस्वित गंगा और कमठास्त्र यमुना के कनका चँवरधारी प्रतीक, उस विकास में उसी प्रकार के विरामचिह्न हैं जिस प्रकार के विराम कृपाणों और गुप्तों के बीच के वे अभिप्राय हैं जो रेतियों की यक्षी कायाधों में अभिमूर्त हुए हैं। प्रगट है कि राष्ट्रचता वह कवि ही परित्यक्ता अयोध्या की विरहित स्थिति का वर्णन दूर की कुशावती में राजा कुश से कर सकता था जिसने कुशाणकामीन मधुरा के जैनस्तम्भों पर उभारी यक्षिया की वह राष्ट्रीय निधि प्रत्यक्ष देखी हो और कसा क उस अभिमत विकास को राष्ट्रीय रूप से स्वीकार किया हो। अयोध्या को राज्यसकामी प्रवासी राजा कुश से कहती है—राजम् अयोध्या के राजप्रासाद को धरमेवासी रेतियों की स्तम्भ-नारियों के रग जो सामों की धूल से मिट गये हैं सो उनके स्तनों को ढकनेवासे कपुकों का अभाव हो गया है और अब उनका उर्ध्वार्ध रायपट्ट से आवृत नहीं होता उन केंचुलों से होता है जो उनके कभी के कमनीय उज्ज्वल तन पर रेंगनेवासे सर्प छोड़ जाते हैं।

कामिदास के तात्कालिक साहित्य तथा ज्ञान की ही भांति समाज के स्वरूप का भी उनकी कृतियों में सांगोपांग वर्णन हुआ है। उनके वर्णन में वह समाज अपने उर्ध्ववर्ध रूप में इस प्रकार प्रतिबिम्बित हुआ है कि राष्ट्र का सर्वांगीण रूप प्रत्यक्ष उतर आया है। बर्षों के आन्वन्तर तथा बाह्य और पारस्परिक संबंध उनके निष्ठी सस्कार, व्यवहार और कर्तव्य

उनकी विभिन्न स्थितिमाँ रोगदाय, नैतिक-धनसिक व्यापार, वस्तुतः समूची राष्ट्रसत्ता का जैसे पारदर्शी यत्र के प्रभाव से, समय के दिव्य चक्षु से बिगन और संप्रति के सान्निध्यसे कवि ने बड़े हज़ार वर्ष बाद के धात्र के भारतीय राष्ट्र को भी उप-सम्भ कर दिया है।

धमप्राण हिन्दू की मूर्तिपूजक निष्ठा उसके व्यापक विश्वास-अविश्वास, यवनों, पाकों, कुपाणों द्वारा प्रारम्भित पालित विकसित विज्ञान ज्योतिष की परम्पराएँ जिस सीमा तक राष्ट्रममत्त होकर कवि-क्रिया में अभिनिविष्ट मूर्तिवत प्रकट हो गई हैं वह कासिदास के पाठक का अभिमत सत्य है। दणन के विभिन्न संप्रदायों का जितना स्वामाविक और सहज वणन कालिदास ने किया है, भीहप के एकात्मिक दार्शनिक ज्ञान के बाबजूद उसका स्पृहणीय है। भारतीय राष्ट्र के दार्शनिक चिन्तन का कौन-सा योग विनियोग है जो कासिदास के स्पष्ट से प्रकृत रह गया है ?

होमर का 'इलियड' सब के एकियाई-दोरियाई ग्रीक भाषियों के मात्र एक मंग को प्रत्यक्ष करता है मद्यपि तत्कालीन ग्रीक जगत् को एक धरा तक वह निदधय अकृत भी करता है। पर कासिदास के मुकाबिले उस कवि का संसार कितना हेय लमता है, कितना उपेक्षित ! होमर अपने शत्रुओं क उस जगत् की ओर समुचित संकेत तक नहीं कर पाता जो ईजि-याई सभ्यता का कभी समूह केन्द्र रहा था। कासिदास की मधेत राष्ट्रीयता विभिन्न अभिनव को, समागत संप्रति को, परंपरागत साक्षि को इस रूप से अपनी इतियों के माध्यम

से अभिषेक करती है कि सहस्राब्दियों का राष्ट्र अपनी समूची प्रक्रियाओं द्वारा आज भी हमारी आँखों के सामने आ खड़ा होता है। कारण कि कामिदास की राष्ट्रीयता समूचे राष्ट्र से सर्वथा अभिन्न है। कारण कि कामिदास राष्ट्र के साथ एकीभूत हो गया है, काम और वेद से स्वतंत्र, तथापि समूचे भारत की वास्तविक और काल्पनिक सीमाओं से अभिन्निमित्त।

१७ | अजेय राष्ट्रभावना

महोते जनराज्याय ।—प्राचीन ऋषियों का यह राष्ट्र के प्रति अभिनन्दन है—महान् जनराज्य को प्रणाम ! इसी तिष्ठा से हमारा भारतीय राष्ट्र सन ६७ में अपने जन्म के बाद राष्ट्रवादियों द्वारा अभिर्नदित हुआ है सतत अभिनन्दनीय है ।

भारत की राष्ट्रभावना अजेय है । कारण कि इसकी निर्माता शक्तियाँ अनेक हैं । इसकी विविधता असाधारण विविध एकता ही इसकी अजेय शक्ति है । वैदिक वाक्य है—

‘जन विभ्रती बहुधा विवाचसं
माना धर्माणंपृथिवीमयीकसम् ।’

भारतीय वसुधा का परिवार जनसङ्घ है, अनेक जातियाँ वह धारण करती हैं उन्हें आहार बेती है । भारत की मायाएँ अनेक हैं शक्तियाँ अनंत हैं उसके अनों के धर्म असंख्य हैं । पर इसको धारण करनेवाली धरती एक है सबका मातृत्व समान है । अपने इन्हीं अनंत अनों से, अनंत पुत्रों से यह भूमाता शक्तिसमती हुई है उसे इन्द्रादियों से घदिष्ठ । इन्हीं अनंत मायाधर्म-शक्तियों के कारण यह महस्रजिह्वा बनती है, मयु-वर्षिणी धारदा । धर्मों की अनेकता, उसकी विविध संस्कृतियों की जननी है, संप्रदायों की विविधता की जननी, जिससे उनके

मिन्न मिन्न अनुयायी अपने भिन्नबोध के भावजूद परस्पर सहिष्णु जीवन बिता सकें, जिससे अनंत संस्कृतियों के संयोग की सम्पदा उनके अंतरावसंबन्ध की एकत्र दक्षिण भारत वसुधैरा की हो सके।

अबसे हमारे इस नवराष्ट्र का अन्त हुआ है, अब से हमने इसकी स्वतंत्र सीमाओं में स्वच्छन्द विचरण किया है। हमारी प्राचीनतम अजेय राष्ट्रीयता तब से सीट घाई है। स्मृतिमन्त्र हुई है। सिकन्दर के प्रति भारतसमर्पण को चुनौती देनेवाले कठों की ग्रीक साम्राज्य के विद्रोही सिन्धी मुषिकों के उन श्रुतियों की जिन्होंने अपने निर्भीक घोर अग्निप्रस्तर उत्तरों से उस विश्वविजेता का हास्यास्पद कर दिया था। कालिदास के रघु की जिम्मे ईरानी कोजक अमरात के पहाड़ों को बगसी दे बसख-बदह्या में घामू दरिया के तीर की केसर की बयारियों में अपने रिमासों के घोड़ हिराए से अखरोटों से भरे बखों के मैदानों में कम्बोजों को घुम अटा मक्खन के देश मर-युसू महाल के उतरोंहें पूरब-पूरब मोटों-किरातों को धूलुठित कर गंगा की उपरकी धारा की नीहारिकाओं से बोझिल शीतल वायु से बकान मिटाई थी। स्मृतियों की शृंखला अटूट है— अर्जुन की उत्तर-विजय का मेका से बर्मा तक मुक्तापीड सलिलादित्य को विगिबज्यों की जिसने 'दुमिया की छत' पामीरों पर अपने कश्मीरी राष्ट्र के मूड़े गाड़े थे अन्द्र की जिसने पञ्जाब की घातों अलघाराओं का सांध बसख को पीठ मिया था अपनी प्रशस्ति—

'तीर्त्वा सप्तमुञ्जानि येन समरे सिन्धोजिता बाह्लिका'—

दिल्ली के पास महरोली के रायपिथौरा के गड्ढे में अपने मोहस्तम पर खुदवा दी थी। वह राष्ट्रमावना आज भी सजग है जिसने उत्तर की सीमाओं पर हूणों का प्रबल गतिरोध किया था, जिसके घनी स्कन्दगुप्त ने रातों रातों समरभूमि में काटी थी, जिसकी मुजायों से हूणों के टकरा जाने से घरा डोस गई थी, आवर्त बन गया था—'हूणयंस्य समागतस्य समरे दोर्म्या घरा कम्पिता।'

सदा से बही राष्ट्रमावना हमारे उत्तरो कर्णों की रक्षा करती रही है। हिन्दूयुग के प्राचीनों पर कभी सोहे से सोहा चला था, जब पंजाब का पाण्ड्य पटना से राष्ट्र का मूक-संवा-सन कर रहा था, जब उसके मौर्य चन्द्रगुप्त ने सिन्दर के अनरस, सीरिया के सम्राट सेल्युकस को अप्रतिम कर उसकी पूर्वी सीमाओं के धार प्रांत छान लिये थे, जब पिछले दिनों में साहियों ने काबुल के पहलू बन उत्तर के माने अपनी चट्टानी छावियों पर मेले थे जब हरीसिंह नमना के बिक्रांत पौरव ने हिन्दूयुग की लंबाईयों से दहाड़ा था, जब जोरावर सिंह ने कदमोरी सहाय सं तिब्यस की राह ली थी। निश्चय वह इसी भारतीय राष्ट्रीय भावना की धमक थी जो उस पौरगर्जव के अरिष्ट करगना में धमकी जहाँ सम्मुख पराजय के सामने घात उस भारतीय ने, दुश्मनों के बीच, उनके देखते मोह से काठी लीस उसे अनिमास बना लिया था।

वह राष्ट्रीय जनचेतना निश्चय अशोक है जीती नहीं जा सकती। जनों की चेतना है यह उन राष्ट्रीयों की जिन्होंने भारत की घरा पर घट्ट गणराज्यों का निर्माण किया था—

वज्रियों-सिञ्छवियों का, धरदटों-कंठों का, क्षुद्रकों-मासवों का ।
 निःसन्देह क्षुद्रकों का मासवों का, जो एक हाथ में हसिमा धारण
 करते थे और दूसरे में तमवार तथा जिनकी प्राचीन स्मृति से
 सुरक्षित शपथ थी—हस्त में दक्षिणे हस्ते जयो मे सम्य घ्राहित
 —दाहिने हाथ से कर्म करता हू बायें हाथ से विजय सोढ़ता
 हू, दाहिने में कर्म बसता है बायें में विजयश्री ।

हमारा राष्ट्र नित्य है नित्य अम लेता है विनसित होता
 है, प्रलय है—नवो नवो भवति जायमान—नित्य नया होता
 है, अमर है । नित्य जीता है क्योंकि हम इसके राष्ट्राभिमानी,
 इसमें नित्य निरन्तर जागते हैं, सदा से ऋषिकाल से जागते
 रहते हैं—

‘राष्ट्रे जाग्याम वयम्

राष्ट्रे जाग्याम वयम्’

राष्ट्र की रक्षा में हम सदा कटिबद्ध रहते आएँ कटिबद्ध
 रहेंगे । भय हमें छू नहीं जाएगा—भय ही राष्ट्र की रक्षा में
 बाधक होता है—हम निर्भीक इसकी रक्षा करेंगे भय से हम
 सर्वथा विहीन होंगे, सूर्य चन्द्रमा की भांति निर्भय । सूर्य और
 चन्द्रमा जैसे सदा निर्भीक रहते हैं, सदा प्रलय बसे ही नव-
 राष्ट्र की रक्षा में सन्नद्ध हम भी निर्भीक रहेंगे हमारे प्राण
 अथवा मोह न जानेंगे, भय न जानेंगे—यष्पु सूर्यस्वप्नद्रव्य न
 विभीतो न रिष्यत । एवा मे प्राण मा बिमे ॥

जब-जब हमारी उस राष्ट्रचेतना का ह्रास हुआ है तब-तब
 हमारे सुचेता विचारकों की वाणी घाग बरसा पड़ी है । विष्णु-
 पुराणकार, विम्बिजयी समुद्रगुप्त की प्रसरनीति के माब की

साथ राम तक के साम्राज्य को धिक्कार उठता है, कहता है—
मिट गए वे जिन्होंने कहा या कहना चाहा भारत मेरा है। वे
साम्राज्य मिट गए, उनके निर्माता सम्राट मिट गए, काल उन्हें
वहा से गया और आज इसमें तक सदेह होने लगा है कि वे
कभी हुए भी वे राम तक के अस्तित्व में—धिक्कार है
साम्राज्य को ! धिक्कार है राष्ट्र के साम्राज्य को ! धिक्कार
है ऐश्वर्य को ! यह बाणी पाँचवीं सदी के जनचेता राष्ट्रचेता
द्विहासकार की है ।

हमारी राष्ट्रभाषणा भारत के जनो की मानता है, विविध
धर्म माननेवाले, विविध भाषाएँ बोलनेवाले जनो की—क्योंकि
हमारी पृथ्वी उन्हींको धारण करती है—

‘जन विघ्नती बहुधा विवाचसं, नाना धर्माण पृथिवी ययौ
कसम्’—समूचे राष्ट्र के रूप में उस पृथ्वी को जन स्वीकार
करते हैं। अकसे उसका मातृत्व मानते हैं—‘माता भूमि पुत्रो
अह पृथिव्या —भूमि मेरी माता है उस माता पृथ्वी के भारत
का मैं पुत्र हूँ। ‘महते ज्ञानराज्याय’!—इस महान् गणराज्य
भारत को प्रणाम ।

